अठाईस वर्षीया मुख्तार माई का यह जिंदगीनामा गाँव की पंचायत की मान्यता से किये गये सामूहिक बलात्कार से शुरु होता है और उसके पाकिस्तान की प्रतिनिधी बनकर अमरीका के सेनेट को संबोधित करने तक का सफर तय करता है। अपनी निजी त्रासदी से धूल का फूल बनने के बजाय इस अनपढ़ औरत ने अपने गाँव में एक स्कूल खोल दिया है और अपनी जिंदगी से कई जिंदगियाँ सँवारने में कामयाबी हासिल की है। टाईम पत्रिका से 'इस वर्ष की महिला' घोषित मुख्तार माई इस किताब के माध्यम से अपनी दास्तान सुना रही है, गौर से सुनिये।

'मुझे नहीं मालूम की युवा गांधी या मार्टीन लूथर किंग को देखते हुए पत्रकारों को ऐसा कुछ आभास हुआ या नहीं, लेकिन मुख्तार माई के वजूद में मुझे महानता का एहसास होता है।'

निकोलस डी. क्रिसतॉफ
दी न्यूयॉर्क टाईम्स
2 अप्रैल, 2006

ISBN 81-903651-2-6
9 788190 365123

मुख्तार माई

इज़्ज़त के नाम

एक दस्तावेज़

इज़्ज़त के नाम

एक दस्तावेज़

इज़्ज़त के नाम

एक दस्तावेज़

मुख़्तार माई

मारी-थेरीज़ क्यूनी के सहयोग से

लिण्डा कवरडेल
के अंग्रेज़ी अनुवाद का हिन्दी रूपान्तर
नीलाभ

अरविन्द कुमार

Déshonorée by Mukhtar Mai
Written in collaboration with Marie-Thérése Cuny
Copyright © Oh! Edition, Paris, 2006
All rights reserved

हिन्दी अनुवाद © 2006 अरविन्द कुमार पब्लिशर्स
सर्वाधिकार सुरक्षित

पहला हिन्दी संस्करण : सितम्बर 2006

अरविन्द कुमार पब्लिशर्स
सी-1/324, पालम विला, पालम विहार,
गुड़गांव 110017 द्वारा प्रकाशित।

टेलीफ़ोन : 0124 4256103-4
फ़ैक्स : 0124 4256103
ई-मेल : arvindkr @ sify. com

प्रकाशक की अनुमति के बिना, इस पुस्तक के किसी भी अंश का,
किसी भी रूप से, पुनर्मुद्रण नहीं किया जा सकता।
अनुमति के लिए प्रकाशक को लिखें।

ISBN 81-903651-2-6

मूल्य 100 रुपये

लेज़र कम्पोजिंग :
एस. के. कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिन्टर्स, इलाहाबाद

मुद्रकः विमल ऑफसैट, दिल्ली

भूमिका

मुख़्तार माई एक बत्तीस वर्षीया पाकिस्तानी किसान महिला है। वह हिन्दुस्तान की सरहद के नज़दीक, दक्षिणी पंजाब के एक छोटे-से गाँव, मीरवाला में रहती है।

जब पत्रकारों ने सूचना दी कि उसके गाँव की कबायली पंचायत ने मुख़्तार को सामूहिक बलात्कार की सज़ा दी थी तो इस ख़ौफ़नाक ख़बर ने दुनिया भर के अख़बारों की सुर्ख़ियों में एक हलचल मचा दी। निरक्षर, और प्रकट रूप से अबला, होते हुए भी, मुख़्तार माई में साहस था, और वह एक बर्बर प्रथा के ख़िलाफ़, जिसने उसे लगभग तबाह कर दिया था, संघर्ष करके अपने सम्मान, अपनी इज़्ज़त को बहाल करने वाली अपने देश की पहली महिला बनी।

मैं और मेरे सहकर्मी मीरवाला के सुदूर गाँव तक का कठिन सफ़र तय करके वहाँ पहुँचे, जहाँ मुख़्तार माई और उसकी सहेली नसीम अख़्तर ने हमारा स्वागत किया। उन्हें बेहद हैरत हुई कि हम फ़्रान्स से इतनी दूर चल कर मुख़्तार माई को यह सुझाव देने आये थे कि हमें मिल कर एक किताब लिखनी चाहिए - एक किताब जो उसे उसके संघर्ष में मदद देगी। कई घण्टों की बातचीत के बाद हम सब इस बात पर सहमत हो गये कि उसकी किताब फ़्रान्स में प्रकाशित होगी, और वह किताब के लोकार्पण के समय फ़्रान्स आयेगी।

मारी-थेरीज़ क्यूनी एक ऐसी लेखिका हैं, जो लम्बे समय से महिला अधिकारों के उद्देश्य के प्रति समर्पित रही हैं। वे कुछ हफ़्ते बाद मीरवाला पहुँचीं। मुख़्तार माई सिर्फ़ सरायकी बोलती है, लेकिन बड़ी ख़ुशकिस्मती से मुस्तफ़ा बलूच और सैफ़ ख़ान ने अनमोल सहायता उपलब्ध करायी : फ़्रेंच और सरायकी, दोनों भाषाओं में प्रवीण होने के कारण वे दोनों महिलाओं की बातों का अनुवाद करके उनके बीच सहयोग को सुविधाजनक बना सके।

रोज़-ब-रोज़ सूरज उगने से ले कर रात गये तक बड़े धीरज के साथ मारी-थेरीज़ क्यूनी ने मुख़्तार माई को अपनी ज़िन्दगी के बारे में बात करते सुना : उसका बचपन, गाँव की पंचायत के हाथों उसकी अमानुषिक यातना, और इन्साफ़ के लिए उसकी जद्दो-जेहद, जो अब भी जारी थी। पहली बार इस पाकिस्तानी औरत ने दृढ़ता और विस्तार के साथ बाहर की दुनिया को अपनी और अपने देश की औरतों की यातना के बारे में बताया, जो उन्हें बेइज़्ज़त करने वाले रिवाजों का शिकार थीं।

मारी-थेरीज़ क्यूनी ने उसके शब्दों को इस पुस्तक में रूपान्तरित किया। यह सुनिश्चित करने के लिए कि पाठ, जहाँ तक हो सके, मुख़्तार माई के अभिप्राय और मन्तव्य के प्रति सच्चा हो, हम पाकिस्तान लौटे, जहाँ मुख़्तार माई ने भाव-भरी एकाग्रता के साथ अपनी पुस्तक का पाठ सुना। उतनी ही एकाग्रता से जितनी एकाग्रता से एक वक्त मारी-थेरीज़ क्यूनी ने मुख़्तार माई को सुना था। मुख़्तार माई को इस बात से बेहद हैरत हुई कि उसके शब्द सचमुच छपी हुई सामग्री में तब्दील हो गये थे और उसका संघर्ष अब एक पुस्तक बन चुका था। अपनी ताईद की निशानी के तौर पर उसने पाण्डुलिपि के हर पृष्ठ के नीचे अपने नाम के पहले अक्षर 'एम एम' अंकित कर दिये।

जनवरी 2006 में फ़्रान्स के विदेश मन्त्री द्वारा स्वागत किये जाने के बाद मुख़्तार माई ने एक ऐसे स्थान पर महिलाओं के अधिकारों के बारे में व्याख्यान दिया जो सारी मनुष्यता के अधिकारों के प्रति समर्पित है : पैरिस का प्लासे दे द्रॉएत्स दे ल'ॉम।

इज़्ज़त के नाम

एक दस्तावेज़

यात्रा के कठिन कोस

22 जून, 2002 की रात हमारे घरवाले एक फ़ैसला करते हैं।

मैं, मुख़्तार बीबी, मीरवाला गाँव की रहने वाली और गूजर किसानों के कबीले की एक औरत, अपने परिवार की ओर से ताकतवर मस्तोई कबीले के किसानों की एक प्रभावशाली और दबंग स्थानीय बिरादरी के सामने पेश होऊँगी।

मेरे छोटे भाई शकूर पर मस्तोइयों ने इल्ज़ाम लगाया है कि उसने उनकी बिरादरी की एक नौजवान लड़की - सलमा - से 'बात' की थी। शकूर महज़ बारह साल का है, जबकि सलमा बीस से ऊपर की है, हम जानते हैं कि मेरे भाई ने कोई ग़लत काम नहीं किया है, लेकिन अगर मस्तोइयों ने कुछ और फ़ैसला किया है तो हम गूजरों को उनकी फ़रमाइश के आगे झुकना ही पड़ेगा। हमेशा से ऐसा ही होता आया है।

मेरे बाप और चाचा ने सारी हालत मुझे समझा दी है।

"हमारे मुल्ला, अब्दुल रज़्ज़ाक का दिमाग़ जवाब दे चुका है। गाँव की पंचायत में मस्तोइयों की तादाद ज़्यादा है, और उन्होंने सुलह-समझौते की हर पेशकश ठुकरा दी है। वो हथियारबन्द हैं। तुम्हारे मामा और मस्तोइयों के एक दोस्त, रमज़ान पाचर ने बिरादरी के लोगों को ठण्डा करने के लिए हर तरकीब आज़मा कर देख ली है। अब हमारे पास बस, एक आख़िरी मौका बचा है : गूजरों की एक औरत को उनकी बिरादरी के सामने पेश होना पड़ेगा। घर की तमाम औरतों में से हमने तुम्हें चुना है।"

"मुझे क्यों?"

"दूसरी औरतें इस काम के लिए बहुत छोटी हैं। तुम्हारे शौहर ने तुम्हें तलाक दे दिया है, तुम्हारा कोई बच्चा नहीं है, तुम कुरान पढ़ाती हो। तुम एक इज़्ज़तदार औरत हो।"

दिन ढले काफ़ी वक्त गुज़र चुका है, लेकिन अभी तक मुझे इस बारे में बहुत कम बताया गया है कि किस चीज़ ने आज इतना संगीन झगड़ा खड़ा कर दिया है। अब तक हमारे जिर्गे के मर्दों को बातचीत करते कई घण्टे हो गये हैं, और सिर्फ़ उन्हीं को पता है कि मुझे क्यों उस अदालत के सामने हाज़िर होना है।

शकूर दोपहर ही से नदारद है। हमें बस इतना मालूम है कि दोपहर को वह हमारे घर के पास एक गन्ने के खेत में था, लेकिन आज रात वह गाँव से तीन मील दूर पुलिस थाने में बन्द है। मुझे ख़ुद अपने बाप की ज़बानी पता चलता है कि मेरे छोटे-से भाई को पीटा गया है।

"जब पुलिस शकूर को मस्तोइयों के घर से बाहर लायी तो हमने उसे देखा था। वह बुरी तरह लहू-लुहान था, और उसके कपड़े फटे हुए थे। पुलिस उसे हथकड़ी लगा कर ले गयी और मुझे उससे बात भी नहीं करने दी। मैं हर जगह उसकी तलाश करता फिर रहा था, और एक आदमी ने जो खजूर के पेड़ पर चढ़ा डालियाँ काट रहा था, आ कर मुझे बताया कि उसने देखा था, मस्तोई शकूर को अग़वा करके ले गये थे। गाँव में लोग मुझे आ-आ कर ख़बर देने लगे कि मस्तोई उस पर ग़ैर कानूनी चाल-चलन और चोरी का इल्ज़ाम लगा रहे थे।"

इस तरह के उलटे इल्ज़ाम लगाने और बदला लेने में मस्तोई पुराने पापी हैं। उनकी बिरादरी का ताकतवर मुखिया बहुत-से असरदार लोगों को जानता है, और वो दंगा-फ़साद और ख़ून-ख़राबा करने वाले लोग हैं, अपनी बन्दूकों के साथ किसी के भी घर पर हमला करके उसे लूटने, औरतों को बेइज़्ज़त करने, और उस जगह को तहस-नहस कर देने के काबिल हैं। नीची जात वाले गूजरों को उनका विरोध करने का कोई हक नहीं, और मेरे परिवारवालों में से किसी ने भी उनके घर जाने की हिम्मत नहीं की है।

अपने मज़हबी ओहदे की वजह से सिर्फ़ मुल्ला को इस झगड़े में दख़ल देने का हक है, लेकिन उसकी सारी कोशिशें नाकाम रही हैं। लिहाज़ा, मेरे अब्बा पुलिस में शिकायत दर्ज कराने के लिए गये। घमण्डी मस्तोइयों ने, इस बात से नाराज़ हो कर कि एक गूजर किसान ने पुलिस के सिपाहियों को ऐन उनकी ड्योढ़ी पर भेज कर उन्हें चुनौती दी है, तफ़सीलें भरने के लिए अपनी कहानी में थोड़ी-सी फेर-बदल कर दी है : अब उन्होंने सीधे-सीधे शकूर पर सलमा की इज़्ज़त लूटने का इल्ज़ाम लगाया है। उनका दावा है कि मेरे भाई ने *ज़िना* किया है, पाकिस्तान में जिसका मतलब है - बलात्कार, पराये मर्द या परायी औरत से ताल्लुक रखना, या निकाह की पाकीज़गी के बिना शारीरिक सम्बन्ध बनाना। मेरे भाई को सौंपने से पहले, मस्तोइयों ने माँग की है कि उसे हिरासत में रखा जाय, और उन्होंने ताकीद की है कि अगर उसे जेल से छोड़ा जाय तो उसे वापस मस्तोई बिरादरी के हवाले किया जाय। शरीअत के मुताबिक ज़िना की सज़ा मौत हो सकती है, लिहाज़ा पुलिस ने दो वजहों से शकूर को हवालात में कैद कर दिया है; इसलिए कि उस पर एक संगीन जुर्म का इल्ज़ाम है, और इसलिए भी कि उसे उपद्रवी मस्तोइयों से बचाया जा सके, जो कानून को अपने हाथ में लेने पर उतारू हैं। दोपहर बाद से ही सारे गाँव को इस सबके बारे में मालूम था, और मेरे पिता

हमारे कुनबे की औरतों को हिफ़ाज़त की ख़ातिर हमारे पड़ोसियों के घर ले गये थे। हम जानते हैं कि मस्तोई हमेशा अपना बदला नीची जात की किसी औरत से चुकाते हैं। यह औरत का फ़र्ज़ है कि वह ख़ुद को ज़लील करे, मस्तोइयों की हवेली के सामने जिर्गे में इकट्ठा गाँव के मर्दों के सामने माफ़ी माँगे।

हमारे खेत से उनकी हवेली और खेत मुश्किल से तीन सौ गज़ की दूरी पर हैं, तो भी मैं उसे बाहर ही से देख कर पहचानती हूँ : ऊँची-ऊँची दीवारें, और एक खुली छत जहाँ से वो आस-पड़ोस पर यूँ नज़रें घुमाते हैं मानो वो सारी दुनिया के बादशाह हों।

❐

"मुख़्तार, चल तैयार हो जा, और हमारे पीछे-पीछे आ।"

उस रात, मुझे ज़रा भी ख़याल नहीं है कि हमारी छोटी-सी खेती से मस्तोइयों के पैसेवाले घर को जाने वाला रास्ता हमेशा-हमेशा के लिए मेरी ज़िन्दगी बदल देगा। हालाँकि मेरी मुहिम ख़तरनाक है तो भी मुझे भरोसा है। मैं अपनी इबादत की किताब को अपने सीने से लगाये चल देती हूँ। कुरान शरीफ़ मेरी हिफ़ाज़त करेगी।

मेरे पिता ने वही चुना जो इन हालात में मुमकिन था। मैं अट्ठाइस बरस की हूँ, और भले ही मुझे लिखना-पढ़ना न आता हो, क्योंकि हमारे गाँव में लड़कियों के लिए कोई स्कूल नहीं है, लेकिन मैंने कुरान की कुछ आयतें सुनाना सीख लिया है, और अपने तलाक के बाद मैं नेकी करने के ख़याल से अपने गाँव के बच्चों को ये आयतें सिखाती रही हूँ। यही मेरी इज़्ज़त है। और यही मेरी ताकत।

मैं कच्चे रास्ते पर अपने पिता, अपने चाचा, हाजी अल्ताफ़, और ग़ुलाम नबी के आगे-आगे कदम बढ़ाती हूँ। ग़ुलाम नबी दूसरी जात का एक दोस्त है, जो जिर्गा की बातचीत के दौरान बिचौलिये का फ़र्ज़ निभाता रहा है। वो मेरी हिफ़ाज़त को ले कर डर रहे हैं, और मेरा चाचा तो मेरे साथ आने से पहले ख़ुद भी हिचका था। इसके बावजूद मैं एक किस्म के बच्चों जैसे भरोसे के साथ आगे बढ़ती जा रही हूँ। मैंने कोई जुर्म नहीं किया है। मैंने ख़ुद कोई ग़लती नहीं की है। मैं ख़ुदा में विश्वास करती हूँ, और अपने तलाक के बाद सारे फ़र्ज़ निभाती हुई, मर्दों की दुनिया से दूर, अपने परिवार के साथ सुकून-भरे अकेलेपन की ज़िन्दगी बसर करती रही हूँ। किसी ने कभी मेरी कोई बुराई नहीं की, जैसा कि अक्सर दूसरी औरतों के साथ होता है। मिसाल के लिए, सलमा अपने ढीठ तौर-तरीकों के लिए मशहूर है : उस लड़की की ज़बान बड़ी तेज़ है, और वह बड़ी चलित्तरी है। हो सकता है कि मस्तोइयों ने सलमा से सम्बन्धित किसी बात पर पर्दा डालने के लिए मेरे छोटे-से भाई की मासूमियत का फ़ायदा उठाने की कोशिश की हो। जो भी हो, फ़ैसला मस्तोई करते हैं और गूजरों को सिर झुका कर मानना पड़ता है।

जून की वह रात उस समय भी दिन की गरमी से झुलस रही है; चिड़ियाँ सोयी हुई हैं, बकरियाँ भी। कहीं कोई कुत्ता उस ख़ामोशी में भौंक उठता है, जो मेरे कदमों की आहट के इर्द-गिर्द फैली हुई है, ऐसी ख़ामोशी जो आहिस्ता-आहिस्ता एक हल्की गड़गड़ाहट में बदलती है। जैसे-जैसे मैं आगे बढ़ती हूँ मुझे नाराज़ लोगों की आवाज़ें सुनायी देने लगती हैं, जिन्हें मैं अब मस्तोइयों के खेतों के दरवाज़े पर लगी एक अकेली बत्ती की रोशनी में देख सकती हूँ। सौ से ज़्यादा लोग वहाँ मस्जिद के पास खड़े हैं, हो सकता है, दो-ढाई सौ के करीब हों, और उनमें ज़्यादातर मस्तोई हैं। वही हैं जो जिर्गे पर हावी हैं। हालाँकि अब्दुल रज़्ज़ाक हमारे गाँव का मुल्ला है, वह भी उनके ख़िलाफ़ नहीं जा सकता। मैं भीड़ में उसे तलाश करती हूँ; वह वहाँ नहीं है। उस समय मुझे यह नहीं मालूम है कि मस्तोइयों से इस बात पर असहमत हो कर कि मामले को कैसे निपटाया जाय, जिर्गे के कुछ सदस्य पंचायत से जा चुके हैं। बाग-डोर अब मस्तोइयों के हाथ में है।

अपने सामने मुझे फ़ैज़ मुहम्मद, जिसे सब फ़ैज़ा कहते हैं, चार और आदमियों के साथ खड़ा नज़र आता है : अब्दुल ख़ालिक, ग़ुलाम फ़रीद, अल्लादित्ता और मुहम्मद फ़ैयाज़। उनके पास बन्दूकें और एक पिस्तौल है, जिन्हें वो फ़ौरन मेरे कबीले के लोगों पर तान देते हैं। मस्तोई मेरे घरवालों को डरा कर भगाने के लिए अपनी बन्दूकें लहराते हैं, लेकिन मेरे पिता और चाचा टस-से-मस नहीं होते। फ़ैज़ ने उन्हें कुछ दूर रोक रखा है, मगर वो मेरे पीछे खड़े रहते हैं।

मस्तोइयों ने अपनी बिरादरी को अपने पीछे इकट्ठा कर लिया है, बेसबरे और भड़के हुए लोगों की एक डरावनी दीवार।

मैं एक चद्दर लायी हूँ, जिसे मैं वफ़ादारी की निशानी के तौर पर उनके पैरों के सामने फैला देती हूँ। याद से, मैं कुरान की एक आयत पढ़ती हूँ, मुकद्दस किताब पर अपना हाथ रखते हुए। जो कुछ भी मैं मज़हबी किताबों के बारे में जानती हूँ, वह मैंने सुन कर सीखा है, पढ़ कर नहीं, लेकिन मैं शायद इन जानवरों की बनिस्बत, जो हिकारत से मुझे घूर रहे हैं, कुरान पाक की आयतों से ज़्यादा वाकिफ़ हूँ। अब वक्त आ गया है कि मस्तोइयों की इज़्ज़त एक बार फिर पाक-साफ़ हो सके। पंजाब, जो पाँच नदियों के देश के नाम से जाना जाता है, पाक लोगों का मुल्क भी कहलाता है। लेकिन कौन हैं जो पाक हैं?

मस्तोइयों की बन्दूकें और उनके शैतानी चेहरे देख कर मेरी हिम्मत जवाब दे रही है - ख़ास तौर पर अब्दुल ख़ालिक को देख कर, जिसके हाथ में एक पिस्तौल है। उसकी आँखें किसी पगलाये आदमी जैसी हैं, नफ़रत से चमकती हुईं। लेकिन हालाँकि मुझे नीची जात की औरत होने की वजह से पक्के तौर पर अपनी हैसियत मालूम है,

मेरे अन्दर भी इज़्ज़त का एहसास है, गूजरों की इज़्ज़त का। छोटे, ग़रीब किसानों की हमारी बिरादरी यहाँ सदियों से रहती आयी है, और इसके बावजूद कि मैं अपने लोगों के इतिहास से बख़ूबी वाकिफ़ नहीं हूँ, मैं महसूस करती हूँ कि वह मेरा हिस्सा है, मेरे ख़ून में है। मैं जिस मुसीबत में पड़ गयी हूँ, उसकी वजह से पथरायी हुई मैं, आँखें नीची किये वहाँ खड़ी हूँ।

मैं निगाहें उठाती हूँ, लेकिन फ़ैज़, अपने सिर को हिकारत से हिलाते हुए, कुछ नहीं कहता। कुछ पलों के लिए सब शान्त हैं। मैं ख़ामोशी से दुआ करती हूँ, और फिर, अचानक डर मुझ पर तारी होता है, बरखा की झड़ी की तरह, मेरे जिस्म को बिजली की कौंध से सुन्न करता हुआ।

अब मैं उस आदमी की आँखों में यह देख सकती हूँ कि वह चाहता था एक गूजर औरत मस्तोइयों के जिर्गे के सामने पेश हो ताकि वह पूरे गाँव के सामने उससे बदला ले सके। इन लोगों ने मुल्ला, मेरे बाप, मेरे पूरे परिवार, और उस जिर्गे के पंचों को, जिसमें वो ख़ुद भी शामिल हैं, बेवकूफ़ बनाया है। यह पहली बार है कि ख़ुद पंचों ने इस्मतदरी को, एक सामूहिक बलात्कार को, उस इन्साफ़ के लिए ज़रिया बनाने का फ़ैसला किया है, जिसे वो अपना 'इज़्ज़त का इन्साफ़' कहते हैं।

अब्दुल ख़ालिक अपने कबीले के भाइयों की तरफ़ मुड़ता है, जो उस फ़ैसले को अमल में लाने के लिए, ज़ोर-ज़बरदस्ती की नुमाइश करके अपनी ताकत का इज़हार करने के लिए, उतने ही उतावले हो रहे हैं, जितना कि वह ख़ुद। फिर अब्दुल ख़ालिक मेरी बाँह पकड़ लेता है और ग़ुलाम फ़रीद, अल्लादित्ता और मुहम्मद फ़ैयाज़ मुझे धकेलने लगते हैं। उसके बाद मुझे घसीटा जाता है।

मैं वहाँ हूँ, सचमुच, लेकिन मैं अब मैं नहीं रह गयी हूँ : यह पथराया जिस्म, ये काँप कर ढहती हुई टाँगें अब कतई मेरी नहीं हैं। मैं बेहोश होने वाली हूँ, ज़मीन पर गिरने वाली हूँ, लेकिन मुझे इसका मौका ही नहीं मिलता - कसाई के पास हलाल करने को ले जायी जाती बकरी की तरह वो मुझे घसीट ले जाते हैं। मर्दों की बाँहों ने मेरी बाँहें जकड़ रखी हैं, वो मेरे कपड़े, मेरी चद्दर, मेरे बाल खींच रहे हैं।

"कुरान पाक के नाम पर मुझे छोड़ दो," मैं चीख़ती हूँ। "रब्ब के वास्ते मुझे छोड़ दो।"

मैं एक रात से दूसरी में दाख़िल होती हूँ, बाहर के अँधेरे से अन्दर के अँधेरे में, एक घिरी हुई जगह जहाँ मैं उन चार मर्दों को सिर्फ़ एक छोटी-सी खिड़की से छन कर आती चाँदनी के सहारे ही अलग-अलग कर सकती हूँ। चार दीवारें और एक दरवाज़ा, जिस पर एक हथियारबन्द साया पहरा दे रहा है।

भाग निकलना असम्भव है। दुआएँ नामुमकिन हैं।

यहीं वो मेरी इस्मत लूटते हैं, एक ख़ाली अस्तबल की कच्ची ज़मीन पर। चार आदमी - अब्दुल ख़ालिक, ग़ुलाम फ़रीद, अल्लादित्ता और मुहम्मद फ़ैयाज़। मुझे कुछ पता नहीं कि कितनी देर तक वह घिनौनी यातना जारी रहती है। एक घण्टा? सारी रात?

मैं, मुख़्तार बीबी, अपने पिता, ग़ुलाम फ़रीद की सबसे बड़ी बेटी, अपने सारे होशो-हवास खो सकती हूँ, लेकिन मैं उन दरिन्दों के चेहरे कभी नहीं भूलूँगी। उनके लिए औरत सिर्फ़ कब्ज़ा जमाने, बदला लेने, या इज़्ज़त जताने की चीज़ है। वो कबीले की इज़्ज़त के अपने ख़याल के मुताबिक उनसे शादी करते हैं या ज़िना करते हैं। वो जानते हैं कि उस तरह बेइज़्ज़त की गयी किसी औरत के सामने ख़ुदकुशी के सिवा दूसरा चारा नहीं रह जाता। उन्हें तो अपने हथियार भी इस्तेमाल करने की ज़रूरत नहीं पड़ती। ज़िना उसे मार देता है। ज़िना आख़िरी हथियार है : वह दूसरे कबीले को हमेशा-हमेशा के लिए शर्मिन्दगी में डुबो देता है।

वो मुझे पीटने की ज़हमत नहीं उठाते। मैं पहले ही से उनके रहमो-करम पर हूँ, वो मेरे माँ-बाप को डरा-धमका रहे हैं, और मेरा भाई जेल में है। मैं दबने के लिए मजबूर हूँ।

फिर वो मुझे बाहर धकेल देते हैं, अधनंगी हालत में, जहाँ मैं लड़खड़ा कर गिर जाती हूँ। वो मेरी सलवार मुझ पर फेंक देते हैं। अस्तबल का दुहरे पल्लों वाला लकड़ी का दरवाज़ा उन चारों मर्दों को अन्दर ले कर बन्द हो जाता है - मुझे सारे गाँव की नज़रों के सामने अपनी शर्मिन्दगी के साथ अकेला छोड़ता हुआ। मेरे पास यह बताने के लिए शब्द नहीं हैं कि मैं क्या हूँ उस वक्त। मैं कुछ सोच नहीं पाती : एक गहरी धुन्ध मेरे दिमाग़ पर घिर आयी है, उस तकलीफ़ और नापाक बेबसी की तस्वीरों को ढँकती हुई, और सिर झुकाये, मैं कुदरतन अपने बाप को आवाज़ देती हूँ, जो मेरी बची-खुची इज़्ज़त को बचाये रखने के लिए, अपनी चद्दर मुझ पर डाल देता है। मैं चली जा रही हूँ, यह जाने बिना कि मैं कहाँ जा रही हूँ, सिर्फ़ एहसास के बल पर अपने माँ-बाप के घर की तरफ़ बढ़ती हुई, मैं एक भूत की तरह उस रास्ते पर सरकती चली जा रही हूँ। मेरे पिता, मेरे चाचा, और उनका दोस्त रमज़ान कुछ फ़ासले पर मेरे पीछे-पीछे हैं मानो मस्तोइयों ने उन्हें ज़बरदस्ती पकड़ रखा था, और वे अभी-अभी छूटे हैं।

मेरी माँ हमारे घर के बाहर रो रही है। मैं चकरायी, गूँगी, उसके पास से हो कर गुज़र जाती हूँ, ख़ामोशी में दूसरी औरतों के साथ। मैं ज़नाना हिस्से के तीन कमरों में से एक में दाख़िल होती हूँ और फूस के एक बिछौने पर ढह पड़ती हूँ, जहाँ मैं खेस ओढ़े बेहरकत पड़ी रहती हूँ। मेरी ज़िन्दगी अभी-अभी ऐसी दहशत में जा गिरी है कि मेरा दिमाग़ और जिस्म हकीकत को तस्लीम नहीं कर रहा। मैंने कभी सोचा भी नहीं था कि ऐसी ज़ोर-ज़बरदस्ती मुमकिन है। मैं बिलकुल भोली-भाली थी, पिता और बड़े भाई की

हिफ़ाज़त में रहने की आदी, अपने सूबे की सारी औरतों की तरह।

अट्ठारह साल की उमर में मेरे घरवालों ने मुझे एक ऐसे आदमी से ब्याह दिया था जिसे मैं जानती नहीं थी और जो आलसी और निकम्मा साबित हुआ था। अपने वालिद की मदद से मैं जल्द ही तलाक हासिल करने में कामयाब हो गयी थी, और बाहरी दुनिया से महफ़ूज़ अपने दिन गुज़ारती रही थी - जो दुनिया कि मेरे अपने गाँव की हद के आगे नहीं जाती थी। अपने इर्द-गिर्द की बाकी सभी औरतों की तरह बे-पढ़ी-लिखी, मैं एक ऐसी ज़िन्दगी बसर कर रही थी जो रोज़मर्रा के आम घरेलू फ़र्ज़ निभाने और कुछ सीधे-सादे काम करने तक ही सीमित रह गयी थी।

मैं गाँव के बच्चों को बिना पैसे लिये कुरान के सबक देती थी, जो मेरी ही तरह मुकद्दस किताब को सीखते थे - सुन कर। और अपने घरवालों की मामूली कमाई में हाथ बटाने के लिए मैं औरतों को कढ़ाई सिखाती थी जो मुझे अच्छी तरह करना आता था। सुबह से शाम तक मेरी ज़िन्दगी अपने पिता की छोटी-सी खेती की ज़मीनों से घिरी हुई थी - रोज़ाना के काम-काज और मौसम के साथ आने वाली फ़सलों की ताल से बँधी हुई। अपनी शादी के दौरान जो थोड़ी-बहुत बातें मुझे पता चली थीं, जब मैं थोड़े वक्त के लिए दूसरे लोगों के घर में रही थी, उनके अलावा मैं अपनी छोटी-सी दुनिया में रहने वाली तमाम औरतों की ज़िन्दगी के आगे और कुछ नहीं जानती थी।

किस्मत ने मुझे उस इत्मीनान-भरी ज़िन्दगी से जैसे चीर कर अलग कर दिया है, और मैं समझ नहीं पा रही कि मुझे किस बात की सज़ा मिल रही है। मैं बस यही महसूस कर रही हूँ कि मैं मर चुकी हूँ। सोचने के काबिल नहीं रही। न इस अनजानी तकलीफ़ से ऊपर उठने के काबिल, जो मुझे कुचल रही है, सुन्न कर रही है।

मेरे गिर्द जमा सभी औरतें रो रही हैं। मैं उन हाथों को महसूस कर सकती हूँ जो मुझे दिलासा देने के लिए मेरे सिर और मेरे कन्धों को सहला रहे हैं। मेरी छोटी बहनें सिसकती हैं, जबकि मैं हिले बिना वहाँ लेटी रहती हूँ, बड़े अजीब ढंग से उस बदकिस्मती से दूर जो मुझ पर टूट पड़ी है और जिसने मेरे सारे कुनबे पर असर डाला है। तीन दिन तक मैं सिर्फ़ हाजत के वक्त उस कमरे से निकलती हूँ, लेकिन न खाती हूँ, न रोती हूँ, न बोलती हूँ। मैं अपनी माँ को ख़ुद से बात करते सुन सकती हूँ।

"उसे भूल जा, मुख़्तारन। वो गुज़र गया है। पुलिस तेरे भाई को छोड़ देगी।"

मैं दूसरी बातें भी सुनती हूँ।

"शकूर ने जुर्म किया था, उसने सलमा के साथ ज़्यादती की थी !" गाँव की एक औरत दावा करती है।

"मुख़्तारन को किसी मस्तोई से शादी कर लेनी चाहिए थी, जैसा मुल्ला ने कहा था, और शकूर का ब्याह सलमा से हो जाना चाहिए था," एक दूसरी औरत ज़ोर दे कर

कहती है, "इसी ने इनकार कर दिया। सब इसकी अपनी ग़लती है।"

बातें पूरे गाँव में सफ़ेद कबूतरों या काले कौओं की तरह उड़ती फिरती हैं। यह इस पर निर्भर है कि कौन बोल रहा है। धीरे-धीरे मुझे समझ में आने लगता है कि ये अफ़वाहें कहाँ से आ रही हैं।

जिर्गे की बैठक, जो आम तौर पर मुल्ला अब्दुल रज़्ज़ाक के घर पर होती आयी है, इस बार गाँव के बीचों-बीच सड़क पर हुई थी। बिरादरी की यह रवायती पंचायत किसी सरकारी मंज़ूरी के बिना काम करती है, और गाँव के झगड़ों को इस तरह सुलझाने की ज़िम्मेदारी लेती है जिससे, उसूलन, हर फ़रीक को फ़ायदा हो। हमारे गाँवों में ज़्यादातर किसानों की बिसात नहीं है कि वो वकील कर सकें, इसलिए वो जिर्गे से दरख़्वास्त करना बेहतर समझते हैं, क्योंकि सरकारी इन्साफ़ इतना महँगा जो है। जहाँ तक मेरे भाई के ख़िलाफ़ लगाये गये ज़िना के इल्ज़ाम का ताल्लुक है, मुझे समझ नहीं आ रहा कि जिर्गा क्यों कोई समझौता कराने में नाकाम रहा। औरतों को मर्दों के फ़ैसले के बारे में कभी-कभार ही बताया जाता है, और मेरे पिता और चाचा ने मुझे बहुत थोड़ा-सा ही बताया है, लेकिन उस सारी कानाफूसी की बदौलत जो हम तक गाँव से पहुँचती है, मुझे यह समझ में आने लगता है कि मुझे क्यों सज़ा दी गयी है।

अफ़वाह है कि शकूर को सलमा के साथ इश्क़ लड़ाते पकड़ा गया था। दूसरी अफ़वाहों के मुताबिक उसने एक खेत से गन्ने चुराये थे, जो दावा ऐसा लगता है कि मस्तोइयों ने पहले किया था। शकूर पर ज़िनाकारी का इल्ज़ाम लगाने के बाद मस्तोइयों ने उसे अग़वा कर लिया, मारा-पीटा और उसे ज़लील करने के लिए उसके साथ ग़लत काम किया। शकूर ने ये बातें तो बहुत बाद में बतायीं, और वह भी हमारे बाप को। उसने कई बार भागने की भी कोशिश की थी, लेकिन उन्होंने हमेशा उसे फिर से पकड़ लिया था।

फिर, मेरे भाई के साथ की गयी ज़िनाकारी को जिर्गे से छिपाने के लिए, मस्तोइयों ने एक नयी कहानी गढ़ ली जिसमें शकूर ने सलमा के साथ, जो माना जाता है अभी कुँआरी थी, ग़लत काम किया था। एक ख़ौफ़नाक जुर्म, लड़कियों को तो लड़कों के साथ बात करना भी मना है। अगर एक औरत के सामने कोई मर्द आ जाये तो उसे आँखें झुका लेनी चाहिएँ और किसी भी हीले से कभी उससे कलाम नहीं करना चाहिए।

जब मैं शकूर को आँगन से गुज़रते देखती हूँ, मैं ऐसे किसी "जुर्म" की बात ही नहीं सोच पाती। वह सिर्फ़ बारह या तेरह साल का है! (जहाँ हम रहते हैं, एक बच्चे की उमर सिर्फ़ माँ या बाप के मुँह से ही पता चलती है : "इस बरस, तुम पाँच साल के हो गये हो..." या दस, या बीस। हमारे पास पैदाइश का कोई काग़ज़ नहीं होता, क्योंकि पैदाइश कहीं दर्ज नहीं की जाती।) मेरा दुबला-पतला छोटा भाई अभी बच्चा ही

है, और किसी लड़की के साथ ताल्लुक रख ही नहीं सका होगा।

सलमा अलबत्ता बीस साल की किसी हद तक बेलगाम जवान लड़की है। उसने ज़रूर मेरे भाई को कोई उकसाने वाली बात कही हो सकती है, जैसी कि उसकी आदत है, मगर शकूर यकीनन मस्तोइयों के गन्ने के खेत के किनारे सलमा के सामने पड़ने से ज़्यादा और किसी बात का गुनहगार नहीं है। गाँव में कुछ लोग कहते हैं, वह उससे इश्क़ लड़ा रहा था, या कम-से-कम बात कर रहा था, जबकि दूसरों का दावा है कि वो एक-दूसरे का हाथ थामे, साथ-साथ बैठे पकड़े गये थे। बातों की धूल में सच्चाई ग़ायब हो जाती है, और यह इस पर निर्भर है कि बात करने वाले लोग किस बिरादरी के हैं।

मुझे पक्का यकीन है, शकूर ने कोई ग़लती नहीं की है।

सिर्फ़ मेरी तकलीफ़ उन यातनाओं का मुकाबला कर सकती है जो उसने उस रोज़ बरदाश्त की थीं, जैसा कि उसने हमारे पिता को बताया।

ये सारी बातें लगातार मेरे दिमाग़ में तकरीबन हफ़्ते भर तक चक्कर काटती रहती हैं। क्यों शकूर? और क्यों मैं? वह कुनबा तो हमें बस तबाह कर देने पर तुला हुआ था।

और मैं उस पहले सुझाव के बारे में भी और बातें सुनती हूँ, जो कहते हैं मुल्ला अब्दुल रज़्ज़ाक ने मस्तोइयों के सामने रखा था, जब उसने कहा था कि सबको ठण्डा करने और दोनों घरों के बीच हमेशा की लड़ाई बचाने के लिए, अक्लमन्दी का रास्ता यही था कि शकूर की शादी सलमा से करा दी जाय, और बदले में गूजरों की सबसे बड़ी लड़की, यानी मैं, एक मस्तोई को ब्याह लूँ। कुछ लोग अड़े रहते हैं कि मैंने मना कर दिया था, और इसलिए जो मेरे साथ हुआ उसके लिए मैं ज़िम्मेदार थी, क्योंकि मैंने सुलह-समझौते में अड़ंगा डाल दिया था। लेकिन जिर्गे के दूसरे लोग कहते हैं कि मस्तोइयों के सरदार ने ख़ुद इस अनमेल शादी को नामंज़ूर कर दिया था।

"मैं उनके घर की सारी चीज़ें तबाह कर दूँगा," वह चिल्लाया भी था। "मैं मवेशी काट डालूँगा और औरतों की इस्मत लूट लूँगा।"

यही वक्त था, जब मुल्ला जिर्गे से चला आया था, क्योंकि उसके पास सामने रखने के लिए कोई और समझौता नहीं था। आख़िर में रमज़ान ही था, वहाँ मौजूद अकेला आदमी, जो न मस्तोइयों की बिरादरी का था न हमारी, जिसने मेरे बाप और चाचा को एक और तरीका आज़माने के लिए मनाया था : उन जानवरों के आगे ताबेदारी दिखाने के लिए, मेरी उमर की एक इज़्ज़तदार औरत को माफ़ी माँगने के लिए भेजना। इस तरह झुक जाने से मस्तोई रहम करने और अपने इल्ज़ाम वापस लेने के लिए राज़ी हो जायेंगे, ताकि पुलिस मेरे भाई को छोड़ सकेगी। और इसीलिए मैं भरोसे के साथ उन शैतानों का सामना करने निकली थी और किसी को ख़याल भी नहीं था कि मैं सुलह-समझौते की उस आख़िरी कोशिश की शिकार हो जाऊँगी।

❐

बहरहाल, मेरी इज़्ज़त लूटने वालों ने जब मुझे अस्तबल के बाहर धकेल दिया, उसके बाद भी शकूर रिहा नहीं हुआ, इसलिए उसी रात मेरा एक रिश्ते का भाई मस्तोइयों के सरदार फ़ैज़ से मिलने गया।

"जो तुम्हें करना था, कर चुके। अब शकूर को रिहा करवा दो।"

"थाने पर जा, मैं उनसे बाद में बात कर लूँगा।"

मेरा चचेरा भाई थाने पर पहुँचा।

"मैंने फ़ैज़ से बात कर ली है; उसने कहा है लड़के को छोड़ दो।"

पुलिसवाले ने फ़ैज़ को फ़ोन किया मानो वह आदमी उसका मालिक था।

"अभी-अभी कोई यहाँ आया है और कह रहा है तुम शकूर को रिहा करवाने के लिए राज़ी हो गये हो... "

"उसे लड़के को छुड़वाने की कीमत देने दो। पैसे ले लो, फिर उसे छोड़ दो।"

पुलिस ने बारह हज़ार रुपये माँगे, जो हमारे घरवालों के लिए बहुत बड़ी रकम थी, एक मज़दूर की तीन या चार महीने की तनख़ाह के बराबर। मेरे पिता और चाचा ने पैसे इकट्ठा करने के लिए हमारे सभी रिश्तेदारों और पड़ोसियों के चक्कर लगाये और फिर उसी रात पुलिस को देने गये। आख़िरकार, रात के तकरीबन एक बजे मेरा भाई रिहा हुआ और मेरे चाचा और रमज़ान पाचर उसे वापस ले आये।

लेकिन वह अब भी ख़तरे में है। मस्तोइयों की नफ़रत कभी पस्त नहीं होगी : वो मरते दम तक अपने इल्ज़ाम पर टिके रहेंगे, क्योंकि पीछे हटने का मतलब होगा आन और इज़्ज़त गँवाना। और एक मस्तोई कभी हार नहीं मानता। वो वहाँ हैं, अपने घर में, कबीले का सरदार और उसके भाई, गन्ने के खेत की दूसरी तरफ़। नज़रों के सामने। वो मेरे भाई और मुझसे जीत गये हैं, मगर एक लड़ाई का ऐलान हो गया है। मस्तोई, जो एक लड़ाका कबीले के लोग हैं, हथियारबन्द हैं, जबकि हमारे पास सिर्फ़ चूल्हे में जलाने की लकड़ियाँ हैं, और अपनी हिफ़ाज़त के लिए कोई ताकतवर दोस्त नहीं।

❐

मैंने मन बना लिया है : मैं ख़ुदकुशी करना चाहती हूँ। मेरी हालत में औरतें ऐसा ही करती हैं। मैं तेज़ाब पी लूँगी और मर जाऊँगी ताकि शर्मिन्दगी की वह आग जो मुझे और मेरे ख़ानदान को जला रही है, बुझ जाये। मैं अपनी माँ से बिनती करती हूँ कि वह मरने में मेरी मदद करे। उसे जा कर थोड़ा-सा तेज़ाब ख़रीद लाना होगा, जिससे मेरी ज़िन्दगी आख़िरकार ख़त्म हो सके, क्योंकि दूसरों की आँखों में तो मैं पहले ही मर चुकी हूँ! मेरी

माँ फूट-फूट कर रोने लगती है, और रात-दिन मेरे पास से हटे बिना मेरी ख़ुदकुशी की कोशिशें नाकाम कर देती है। मैं सो नहीं पाती, और वह मुझे मरने नहीं देगी। इस लाचारी की वजह से मैं पगला जाती हूँ। मैं इस तरह जीती नहीं रह सकती, नीचे लेटी हुई, अपनी चादर को कफ़न की तरह लपेटे। आख़िर में, जाने कहाँ से, ग़ुस्से का एक हैरतंगेज़ दौरा मुझे उस फ़ालिज से बचा लेता है।

बदला लेने की बारी अब मेरी है। मैं अपने हमलावरों को मारने के लिए किराये पर लोग ले सकती थी। वह जत्था उनके घर के अन्दर घुस जाता, बन्दूकों से लैस, और इन्साफ़ हो जाता। लेकिन मेरे पास कोई पैसा नहीं है! मैं ख़ुद एक बन्दूक ख़रीद सकती थी, या थोड़ा-सा तेज़ाब जो उन्हें अन्धा करने के लिए मैं उनकी आँखों में फेंक सकती थी। मैं... लेकिन मैं सिर्फ़ एक औरत हूँ, और हमारे पास कोई पैसा नहीं - हमें पैसे रखने का कोई हक ही नहीं है। बदला लेने की इजारेदारी सिर्फ़ मर्दों की है, जो औरतों पर ढाये गये ज़ुल्मों से आगे सौंपी जाती है।

इसी समय मुझे कुछ ऐसी चीज़ें पता चलती हैं जो मैंने पहले नहीं सुनी थीं : मस्तोइयों ने पहले ही बेगिनती औरतों के साथ ज़बरदस्ती की है, मेरे एक चाचा का घर लूटा है, और अपनी बन्दूकों के साथ वो किसी के भी घर पर हमला करने और उसे लूटने की ताकत रखते हैं। पुलिस को यह सब पता है, और वह यह भी जानती है कि मस्तोइयों के ख़िलाफ़ कोई भी खड़ा नहीं हो सकता, क्योंकि जो भी उनका मुकाबला करने की हिम्मत करेगा, वह फ़ौरन मार दिया जायेगा। मस्तोई यहाँ पीढ़ियों से रहते आये हैं, और उनके बारे में कुछ नहीं किया जा सकता। उनके दोस्त ऊँची जगहों पर हैं, और उनके हाथ में पूरी ताकत है, हमारे गाँव से ले कर ज़िले के बड़े शहर तक। हर चीज़ उनके काबू में है। इसी से समझा जा सकता है कि जब गड़बड़ी शुरू हुई तो वो पुलिस से क्यों कह सके, "अगर तुम्हें शकूर को छोड़ना पड़े तो तुम उसे वापस हमारे हवाले करना।"

यहाँ तक कि पुलिसवालों को भी मेरे भाई की ज़िन्दगी को ले कर डर था, और इसका यही एक हल उन्होंने खोजा कि उसे जेल की कोठरी में डाल दें, जब तक कि वो उसके कसूर या बेकसूरी का फ़ैसला न कर लें।

इसलिए इस माफ़ी का शुरू से ही नाकाम होना बदा था, जिसे सबके सामने माँगने के लिए मुझसे कहा गया था। मस्तोई उसके लिए सिर्फ़ इस वजह से राज़ी हो गये थे ताकि सारे गाँव के सामने मेरी इस्मत लूट सकें। उन्हें न तो मुल्ला का डर है, न शैतान का, न ख़ुदा का। कबीले के कानून के मुताबिक, उनकी ऊँची जात उन्हें यह तय करने की पूरी आज़ादी देती है कि कौन उनका दुश्मन है - किसे कुचलना, बेइज़्ज़त करना, लूटना या ख़राब करना है। वो कमज़ोरों पर हमला करते हैं, और हम कमज़ोर हैं।

❑

सो मैं ख़ुदा से दुआ करती हूँ कि वह किसी भी मुमकिन तरीके से ख़ुदकुशी और बदले के बीच चुनने में मेरी मदद करे। मैं कुरान की आयतें दोहराती हूँ। मैं ख़ुदा से उसी तरह बातें करती हूँ जैसे मैं तब किया करती थी जब मैं बच्ची थी। जब भी मैं कोई शरारत करती, मेरी माँ हमेशा कहती, "ध्यान रख, मुख़्तारन! ख़ुदा सब देखता है जो तू करती है!"

तब मैं आसमान की तरफ़ देखती और सोचा करती कि क्या वहाँ कोई खिड़की है जिससे ख़ुदा मुझ पर नज़र रखता है, लेकिन अपनी माँ के अदब के ख़याल से मैंने कभी उससे यह सवाल नहीं किया। बच्चे अपने माँ-बाप से सवाल-जवाब नहीं करते। कभी-कभी, जब मुझे किसी बड़े-बुज़ुर्ग से बात करने की ज़रूरत होती, मैं अपनी दादी से यह समझाने के लिए कहती कि चीज़ें कैसे और क्यों होती थीं। सिर्फ़ वही थी जो मेरी बात सुनती थी।

"दादी, अम्मी हमेशा कहती है कि ख़ुदा तुझे देख रहा है। क्या सचमुच आसमान में कोई खिड़की है जिसे वह मुझे देखने के लिए खोलता है?"

"ख़ुदा को खिड़की खोलने की ज़रूरत नहीं, मुख़्तारन। सारा आसमान ही उसकी खिड़की है। वह तुझे देखता है, और इस दुनिया में बाकी सभी लोगों को देखता है। वह औरों की बेवकूफ़ियों के साथ तेरी बेवकूफ़ियों पर भी नज़र रखता है। अब कौन-सी शरारत की है तूने?"

"मैंने और मेरी बहनों ने पड़ोसियों के दादा की लाठी चुपके से चुरा ली थी, और उसे उनके कमरे के दरवाज़े के आर-पार रख दिया। जब दादा अन्दर गये तो हमने अपनी-अपनी तरफ़ से लाठी उठा ली और वो गिर पड़े।"

"ऐसा क्यों किया तूने?"

"क्योंकि वो हमेशा हमें झिड़कते रहते हैं। वो नहीं चाहते कि हम पेड़ों पर चढ़ कर डालियों से झूलें, वो नहीं चाहते कि हम बातें करें, हँसें, खेलें - वो कुछ भी नहीं चाहते! और जैसे ही वो आते हैं, वो अपनी लाठी हिला-हिला कर हमें डाँटते हैं! 'ओए तू, तूने अपने चूतड़ नहीं धोये, जा ख़ुद को साफ़ कर! तू, तूने चुन्नी नहीं ले रखी! जा, ठीक से कपड़े पहन!' वो कभी हम पर बड़बड़ाना बन्द नहीं करते - हमेशा बस यही करते रहते हैं।"

"वो दादा बहुत बूढ़ा है, और कमीना भी है। वो बच्चों को बरदाश्त नहीं कर पाता, यह सच है, पर फिर कभी वैसा मत करना। और क्या किया तूने?"

"मैं यहाँ आ कर तुम्हारे साथ खाना चाहती थी, पर अम्मी ने आने नहीं दिया।

वो कहती है मुझे घर पर ही खाना है।"

"मैं तुम्हारी अम्मी से बात करूँगी ताकि वो मेरी पोती को दोबारा तंग न करे..."

घर में कोई कभी हमें मारता नहीं था। मेरे बाप ने कभी मुझ पर हाथ नहीं उठाया था। मेरा बचपन सीधा-सादा, ग़रीबी का था, न बहुत अच्छा न दुख-भरा, लेकिन हँसी-ख़ुशी से भरपूर। अगर वह वक्त मेरी सारी ज़िन्दगी चलता तो मुझे बहुत अच्छा लगता। मैंने एक बादशाह की शक्ल में ख़ुदा की तस्वीर बना रखी थी : वह लम्बा-तगड़ा था, फ़रिश्तों से घिरा, दीवान पर बैठा हुआ, और वह लोगों को माफ़ कर देता था। जिन्होंने अच्छे काम किये होते, उन पर वह रहम करता, और बाकियों को उनकी बदकारियों के लिए दोज़ख़ में भेज देता।

अट्ठाइस बरस की उमर में (या अगर माँ का यकीन करूँ तो इसके बहुत करीब), शर्मिन्दगी की वजह से इस कमरे में कैद, अपने अकेलेपन में मुझे ख़ुदा का ही आसरा है। मौत? या बदला? मैं अपनी इज़्ज़त कैसे फिर से हासिल करूँ?

और इस दौरान, जब मैं बिलकुल अकेली दुआ माँग रही हूँ, अफ़वाहें लगातार गाँव में उड़ती फिर रही हैं।

लोग कहते हैं कि हमारे मुल्ला ने जुम्मे की नमाज़ के दौरान एक नसीहत दी थी। उसने खुल कर ऊँची आवाज़ में कहा कि गाँव में जो हुआ था वह एक गुनाह था, सारी बिरादरी के लिए शर्म की बात थी, और यह कि गाँववालों को पुलिस से बात करनी चाहिए।

लोग कहते हैं कि नमाज़ पढ़ने वालों में यहाँ के अख़बार का एक ख़बरनवीस भी था और उसने यह किस्सा अपने अख़बार में बयान कर दिया था।

लोग यह भी कहते हैं कि मस्तोई शहर के एक बड़े होटल में गये थे, जहाँ उन्होंने सबके सामने तफ़सील से अपने कारनामे की डींग हाँकी थी, और इस तरह यह ख़बर सारे इलाके में फैल गयी थी।

मेरे अकेले रहने के चौथे या पाँचवे दिन, जिस दौरान मैं बिना खाये-सोये लगातार कुरान की आयतें दोहराती रही हूँ, पहली बार मेरी आँखों से आँसू छलकने लगते हैं। आख़िरकार, मैं रोने लगती हूँ। मेरे सूखे और थके दिमाग़ और जिस्म को आहिस्ता-आहिस्ता बहने वाले आँसुओं की धार में राहत महसूस होने लगती है।

मैं कभी बहुत दिखावा करने वाली नहीं रही। बचपन में मैं बेफ़िक्र, खिलन्दड़ी, छोटी-छोटी मामूली शरारतें करने और पागलों की तरह हँसने वाली थी। मुझे सिर्फ़ एक बार रोना याद है, जब मैं तकरीबन दस बरस की थी। एक चूज़े को जो निकल भागा था, मेरे भाई-बहन दौड़ा रहे थे कि तभी वह घबरा कर ग़लती से उस चूल्हे में जा गिरा जिस पर मैं चपातियाँ बना रही थी। मैंने अंगारों पर पानी फेंका, लेकिन बहुत देर हो चुकी

थी - चूज़ा मेरी आँखों के सामने जल कर मर गया। मुझे पक्का यकीन हो गया कि ग़लती मेरी थी, मैंने उसे बचाने में होशियारी नहीं बरती थी, मैं सारा दिन उस मासूम चूज़े की ख़ौफ़नाक मौत पर रोती रही थी। मैं गुनाह का वह एहसास कभी नहीं भूली, न वह मुझे भूला है, और आज भी मैं ख़ुद को गुनहगार महसूस करती हूँ। अगर मैंने जल्दी की होती तो शायद मैं उस नन्हे-से चूज़े को बचा पाती, जो अपनी छोटी-सी ज़िन्दगी का मज़ा लेने के लिए बड़ा हुआ होता। मुझे महसूस हुआ था मानो मैंने एक जीती-जागती जान को मार कर गुनाह किया है, और अब, अपने कमरे में अकेली, मैं ख़ुद अपने लिए उसी तरह रो रही हूँ जैसे मैं उस मरे हुए चूज़े के लिए रोयी थी, जो कुछ ही लम्हों में आग में भुन गया था।

मुझे अपनी इस्मत लूटे जाने पर गुनाह का एहसास होता है। यह एक बेरहमी-भरा एहसास है, क्योंकि कुछ रोज़ पहले जो हुआ वह मेरा कसूर नहीं था। बचपन में मैं नहीं चाहती थी कि वह चूज़ा मर जाये, ठीक वैसे ही जैसे मैंने ऐसा कुछ नहीं किया था कि मुझे यह शर्मनाक सज़ा मिले। और वो ज़िनाकार? उनके अन्दर गुनाह का कोई एहसास नहीं है! लेकिन मैं, मैं भूल नहीं सकती, और मैं किसी से इस बारे में बात नहीं कर सकती कि मेरे साथ क्या गुज़री थी - ऐसा किया ही नहीं जाता। इसके अलावा, अपने साथ हुई ज़्यादती के बारे में बात करना मेरे लिए बरदाश्त के बाहर होगा, और जब-जब उस ख़ौफ़नाक रात की यादें मेरे ख़यालों पर हावी होती हैं, मैं घबरा कर उन्हें अपने दिमाग़ से धकेल बाहर करती हूँ। मैं याद नहीं करना चाहती! लेकिन मैं ख़ुद को रोक नहीं पाती...

❐

अचानक मुझे घर में चिल्लाने की आवाज़ें सुनायी देती हैं। पुलिस आ पहुँची है।

कमरे से बाहर आ कर मैं शकूर को इतना बदहवास हो कर अहाते में भागते देखती हूँ कि बिना जाने ही वह मस्तोइयों की हवेली का रुख़ करता है! मेरे भाई जितना ही डरे हुए मेरे अब्बा उसके पीछे भागते हैं। मुझे ही उन्हें शान्त करना और घर लौटने के लिए राज़ी करना होगा।

"अब्बा, वापस आइए! डरिए मत! शकूर! चल, घर लौट!"

जब मेरे पिता अपनी बेटी की आवाज़ सुनते हैं - जिस बेटी को उन्होंने कई दिनों से नहीं देखा है - ठीक उसी समय जब वो शकूर के पास जा पहुँचे हैं, तो वो रुक जाते हैं और दोनों-के-दोनों, समझ से काम ले कर, हमारे अहाते में लौट आते हैं, जहाँ पुलिस इन्तज़ार कर रही है।

बड़ी अजीब बात है, मुझे अब किसी चीज़ का डर नहीं है, और पुलिस से मुझे बिलकुल घबराहट नहीं होती। इससे पहले, मैंने पुलिस के उस दस्ते को भी एक औपचारिक

बयान दर्ज कराया था, जो पुलिस स्टेशन को जाते वक्त रास्ते में हमें मिला था। एक बार वह पहली रिपोर्ट, या एफ़.आई.आर. जैसा कि उसे कहते हैं, दर्ज हो गयी थी तो मेरे मन से पुलिस और मस्तोइयों का सारा ख़ौफ़ दूर हो गया था।

"मुख़्तारन बीबी कौन है?'

"मैं हूँ।"

"चल इधर! तुझे हमारे साथ फ़ौरन पुलिस थाने चलना है। शकूर और तेरे अब्बा को भी चलना होगा। तेरा चाचा कहाँ है?"

हम अफ़सरों की गाड़ी में बैठ कर चलते हैं, रास्ते में मेरे चाचा को भी साथ ले लेते हैं, और जतोई ज़िले के बड़े पुलिस थाने जाते हैं, जहाँ हमें तब तक इन्तज़ार करना है जब तक पुलिस का कप्तान नहीं आ जाता। वहाँ कुर्सियाँ रखी हैं, लेकिन हमें बैठने के लिए कोई नहीं कहता। कप्तान, ऐसा लगता है, सो रहा है।

"तुझे बुलाया जायेगा।"

वहाँ अख़बार वाले भी हैं। वो मुझसे सवाल करते हैं, मैं उन्हें अपनी कहानी सुनाती हूँ, बिना अन्दर की सारी बातें बताये जिनसे मेरे सिवा और किसी को कोई मतलब नहीं है। मैं उन्हें अपनी इस्मत लूटने वालों के नाम बताती हूँ, सारे हालात बयान करती हूँ, समझाती हूँ कि कैसे यह सारा कुछ मेरे भाई के ख़िलाफ़ झूठा इल्ज़ाम लगाने के साथ शुरू हुआ। कानून और हमारे अदालती निज़ाम के बारे में भले ही मैं नावाकिफ़ हूँ, जहाँ औरतों की कभी पहुँच नहीं हो पाती, लेकिन मुझे अन्दर से एहसास हो जाता है कि मुझे इन अख़बार वालों की मौजूदगी का फ़ायदा उठाना चाहिए।

और फिर हमारे घर से कोई बेहद घबराया हुआ पुलिस थाने आ पहुँचता है : मस्तोइयों ने सुन लिया है कि मैं थाने में हूँ, और वो हमें सज़ा देने की धमकियाँ दे रहे हैं।

"कुछ मत कहना। अपनी पुलिस की रिपोर्ट वापस ले ले। तुझे यह सारा मामला छोड़ देना है। अगर तू अपनी शिकायत वापस ले कर घर लौट आयेगी तो मस्तोई हमें अकेला छोड़ देंगे, लेकिन अगर तू न मानी..."

मैंने लड़ने का फ़ैसला कर लिया है। मुझे अभी तक नहीं पता पुलिस हमें क्यों लेने आयी थी। बाद में चल कर ही मुझे यह पता चलेगा कि भला हो उस पहली ख़बर का, हमारी कहानी तेज़ी के साथ सारे मुल्क के अख़बारों में फैल गयी है। लोगों ने हमारे बारे में मुल्क की राजधानी इस्लामाबाद में सुन लिया है, और दुनिया की दूसरी जगहों में भी। ख़बर के इस ग़ैर मामूली ढंग से फैलने पर चिन्तित पंजाब की सूबाई सरकार ने स्थानीय पुलिस को, जितनी जल्दी हो सके, इस मामले पर एक रिपोर्ट तैयार करने को कहा है। यह घटना इस बात की निशानी है जब पूरे-के-पूरे जिर्गे ने अपने मुल्ला की राय

को नज़रन्दाज़ किया है और किसी औरत को सामूहिक बलात्कार की सज़ा दी है। लोगों में हाय-तोबा मच गयी है। इसने मस्तोइयों को और नाराज़ कर दिया है।

बहुत-सी बे-पढ़ी-लिखी औरतों की तरह मुझे कानून के बारे में कुछ भी नहीं मालूम था - और अपने हकों के बारे में तो इतना कम कि मुझे यह भी नहीं पता था कि मेरा कोई हक है भी! मगर अब मुझे यह समझ में आने लगा है कि मेरा बदला ख़ुदकुशी के अलावा दूसरा रास्ता भी अख़्तियार कर सकता है। मुझे धमकियों और ख़तरे की क्या परवाह है भला? मेरा जो बिगड़ना था वह तो पहले ही बिगड़ चुका, और मुझे हैरत होती है कि मेरे अब्बू मेरे फ़ैसले की ताईद करते हैं।

अगर मुझे तालीम दी गयी होती, अगर मैं पढ़-लिख सकती तो सब कुछ कितना आसान होता। फिर भी मैं एक बिलकुल नयी दिशा में निकल पड़ती हूँ, जिसमें मेरे घरवाले मेरे साथ हैं।

हमारे आगे का रास्ता बिलकुल अजाना है, क्योंकि हमारे सूबे में पुलिस की लगाम सीधे-सीधे ऊँची जात वालों के हाथ में है। पुलिसवाले कबीले के सरदारों के साथ मिल कर रवायतों के ज़बरदस्त पहरेदारों की तरह काम करते हैं। जिर्गा जो भी फ़ैसला करे पुलिस उसे मंज़ूर करेगी और उसकी ताईद करेगी। अगर पुलिस का ख़याल हो कि मामला गाँव का है तो किसी असरदार ख़ानदान को मुजरिम ठहराना नामुमकिन है, ख़ास तौर पर अगर शिकार औरत हो। ज़्यादातर मामलों में पुलिस गुनहगार की तरफ़दारी करती है, जिसे वह मुजरिम नहीं समझती। एक औरत, पैदाइश से ले कर शादी तक, ख़रीद-फ़रोख़्त की चीज़ से ज़्यादा और कुछ नहीं है। रिवाज के मुताबिक उसके कोई अधिकार नहीं हैं। इसी तरह मैं पाली-पोसी गयी थी और मुझे कभी किसी ने नहीं बताया था कि पाकिस्तान का एक संविधान था, कानून थे, और अधिकार थे जो एक किताब में लिखे हुए थे। मैंने कभी किसी वकील या जज को नहीं देखा था। मैं उस सरकारी इन्साफ़ के बारे में बिलकुल कुछ नहीं जानती थी जो अमीर और पढ़े-लिखे लोगों के लिए ही सुरक्षित था।

इसलिए मुझे कुछ पता नहीं कि शिकायत दर्ज कराने का यह फ़ैसला मुझे कहाँ ले जायेगा। फ़िलहाल तो यह मेरे ज़िन्दा रहने की सीढ़ी है, मेरी बग़ावत और बेइज़्ज़ती का एक हथियार है, एक हथियार जो अभी तक आज़माया नहीं गया है, लेकिन मेरे लिए कीमती है - क्योंकि वही एक हथियार है मेरे पास। मैं इन्साफ़ लूँगी, या मौत। शायद दोनों। जब एक पुलिसवाला आख़िरकार मुझे तलब करता है, और अपने सवालों के मेरे जवाब लिखना शुरू करता है तो मेरे अन्दर एक और एहसास दौड़ जाता है : शक।

तीन बार वह अपने अफ़सर से, जो मुझे कभी दिखायी नहीं देता, मशविरा करने जाता है। हर बार लौट कर वह तकरीबन तीन सतरें लिखता है, हालाँकि मैंने काफ़ी देर तक बोला होता है। जब वह ख़त्म कर लेता है तो वह मेरे अँगूठे पर स्याही लगवा कर

पन्ने के नीचे दस्तख़त के तौर पर दबाने को कहता है। यह मेरा बयान नहीं है, लेकिन इसे मेरे ही मत्थे मढ़ा जाना है।

बिना पढ़ना जाने ही, या यह सुने कि उसने अपने अफ़सर से क्या पूछा, मैं समझ जाती हूँ कि उसने सिर्फ़ आधे सफ़े में बस वही लिखा है जो उसके अफ़सर ने उसे लिखाया था। दूसरे शब्दों में, मस्तोइयों के कबीले के सरदार ने। भले ही मेरे पास इसका सबूत न हो, लेकिन मैं एहसास से इसे जानती हूँ। पुलिसवाले ने जो लिखा है उसे वह मुझे पढ़ कर भी नहीं सुनाता। रात के अब दो बज चुके हैं और मुझे मालूम नहीं कि मैंने अभी-अभी काग़ज़ पर महज़ यह कहते हुए अपना अँगूठा लगाया है कि कुछ नहीं हुआ था, या यह कि मैंने झूठ बोला था। मुझे बाद में पता चलता कि उसने रिपोर्ट पर तारीख़ भी झूठी डाली थी।

जतोई के पुलिस थाने से बाहर आने पर हमें ख़ुद घर लौटने का बन्दोबस्त करना है, जो कुछ मील दूर है। हम एक मोटर साइकिल वाले को खोजते हैं जो यहाँ आने-जाने का आम ज़रिया है, और वैसे तो वह हमें घर ले जाने को तैयार हो जाता, लेकिन वह मुझे और शकूर को ले जाने से इनकार कर देता है क्योंकि उसे रास्ते में मस्तोइयों के सामने पड़ने का डर है।

"मैं तुम्हारे बाप को ले जाने को तैयार हूँ, लेकिन और किसी को नहीं।"

सो रिश्ते का वह भाई जो हमारे ख़िलाफ़ मस्तोइयों की धमकी से हमें ख़बरदार करने के लिए गाँव से आया था, हमारे साथ घर तक जाने को मजबूर हो जाता है, लेकिन वह लम्बे रास्ते से घूम कर जाता है, उस रास्ते से नहीं जिस से हम आम तौर पर जाते हैं।

❐

अब के बाद मेरे लिए कुछ भी "आम तौर पर" नहीं होगा। मैं ख़ुद पहले से बदल गयी हूँ। मैं यह नहीं जानती कि मैं कैसे लड़ूँगी और इन्साफ़ हासिल करके अपना बदला लूँगी। दरअसल, मैं इन्साफ़ चाहती हूँ। वही मेरा इन्तकाम होगा। मेरे नये रास्ते का रुख़, जो सिर्फ़ एक ही हो सकता है, मेरे दिमाग़ में साफ़ है। मेरी इज़्ज़त, और मेरे घरवालों की भी, इस पर निर्भर है। चाहे मुझे अपनी ज़िन्दगी से इसकी कीमत चुकानी पड़े, मैं बेइज़्ज़त नहीं मरूँगी। कई दिनों तक मैंने तकलीफ़ सही है, ख़ुदकुशी करने की सोची है, फूट-फूट कर रोयी हूँ। मैं बदल रही हूँ, अलग ढंग से बर्ताव कर रही हूँ, जो मैं कभी सोच भी नहीं सकती थी कि मुमकिन होगा।

जब मैं कानूनी निज़ाम की तरफ़ यह सफ़र शुरू कर रही हूँ, एक ऐसा रास्ता जिससे कोई वापसी नहीं है, तो मेरा बे-पढ़ा-लिखा होना और मेरी औरत की हैसियत मेरी रुकावट है। अपने घरवालों के अलावा मेरे पास सिर्फ़ एक ताकत है जिसका मुझे सहारा

है : मेरी बेइज़्ज़ती।

पहले, मैं बिलकुल दब कर जीती थी, अब मेरी बग़ावत उतनी ही मुकम्मल होगी।

एक बेहद अनोखा जज

हमारे घर पहुँचने तक सुबह के पाँच बज चुके होते हैं और मैं थकान से चूर-चूर हूँ। ऐसे वक्तों में, मेरे जैसी मामूली हैसियत की औरत इस सोच में पड़ जाती है कि क्या उसका कबीले की परम्परा के जमे-जमाये सिलसिले को उलटने की कोशिश करना ठीक है। मुझे अब मालूम है कि मेरे साथ ज़िना करने का फ़ैसला सारी बस्ती के सामने लिया गया था। दूसरे गाँववालों के साथ मेरे बाप और चाचा ने भी वह फ़ैसला सुना था, लेकिन मेरे घरवालों को उम्मीद थी कि अन्त में हमें माफ़ कर दिया जायेगा। सच्ची बात तो यह है कि हम सब उसी जाल में फँस गये थे, और मेरी तबाही पहले से ही बदी थी।

जो भी डर या शुब्हे मैं महसूस करूँ, अब पीछे हटने के लिए बहुत देर हो चुकी है। मस्तोई हों, या गूजर या बलूच, पंजाब के मर्दों को कोई अन्दाज़ा नहीं है कि किसी औरत के लिए ऐसी ज़बरदस्ती के बारे में बात करना इतना तकलीफ़देह है कि बताया नहीं जा सकता। सीधा-सादा लफ़्ज़ "ज़िना-बिल-जब्र" ही काफ़ी है। वहाँ वो चार आदमी थे। मैंने उनके चेहरे देखे थे। उन्होंने मुझे अस्तबल के बाहर फेंक दिया था, लोग देख रहे थे और मैं अपने आधे नंगे बदन को ढकने की कोशिश कर रही थी, फिर मैं वहाँ से चल दी थी। बाकी सब एक ख़ौफ़नाक सपना है जिसे मैं भुलाने की कोशिश करती रहती हूँ।

अपनी कहानी को बार-बार दोहराना - मैं हरगिज़ ऐसा नहीं कर सकती। क्योंकि उसे बताना, उसे फिर से जीना है। अगर मैं बस इतना महसूस करती कि किसी पर भरोसा कर सकूँ... ज़नाना पुलिस के साथ यह कम तकलीफ़देह होता, लेकिन दिक्कत की बात यह है कि यहाँ पुलिस में और अदालतों में सिर्फ़ मर्द हैं। हमेशा मर्द।

और हमारी परेशानियाँ अभी ख़त्म नहीं हुईं : हम मुश्किल से घर लौटे हैं कि पुलिसवाले फिर आ धमकते हैं। इस बार, वो मुझे ज़िले में पुलिस के बड़े दफ़्तर में "रस्म-अदायगी" के लिए ले जाते हैं।

चूँकि मामले की ख़बरें पहले ही अख़बारों में छप चुकी हैं, मुझे ख़याल आता है कि अफ़सरों को दूसरे अख़बार वालों के आने का डर है, जो इस ख़बर को और भी दूर-दूर तक फैला देंगे। हालाँकि, मुझे सचमुच किसी चीज़ के बारे में पक्का यकीन नहीं है। जिस्म की एक-एक हरकत मेरे लिए एक कोशिश है, और अपने ऊपर दूसरों की नज़रें महसूस करना निरी बेइज़्ज़ती। ऐसे सख़्त तजुरबे के बाद कोई खा, पी और सो कैसे सकता है? मगर इसके बावजूद, मैं उठ कर बाहर आती हूँ और पुलिस की गाड़ी में सवार हो जाती हूँ, जहाँ मैं अपनी चद्दर में अपना मुँह छिपा लेती हूँ, और सड़क को गुज़रते हुए भी नहीं देखती। मैं एक अलग ही औरत बन गयी हूँ।

❐

मैं ख़ुद को फ़र्श पर बैठा पाती हूँ, अजनबियों के साथ, एक ऐसे कमरे में जो सामान से बिलकुल ख़ाली है। मुझे कुछ पता नहीं कि मैं यहाँ क्या कर रही हूँ, या आगे क्या होने वाला है। कोई मुझे पूछ-ताछ करने की ख़ातिर कहीं ले जाने नहीं आता।

और चूँकि मुझसे कोई बात नहीं करता, न मुझे कुछ समझाता है, मेरे पास इस बारे में सोचने का बहुत वक्त है कि औरतों के साथ कैसा सलूक किया जाता है। ये मर्द ही हैं जो "जानते" हैं; औरतों को बस ख़ामोश रहना और इन्तज़ार करना चाहिए। हमें कुछ भी जानने की क्या ज़रूरत है? मर्द तय करते हैं, हुकूमत करते हैं, कदम उठाते हैं, सही-ग़लत के फ़ैसले करते हैं। मैं उन बकरियों के बारे में सोचती हूँ, जिन्हें खेतों में घूमने-फिरने से रोकने लिए आँगन में बाँध दिया जाता है। यहाँ मेरी हैसियत भी एक बकरी से ज़्यादा की नहीं, भले ही मेरी गर्दन में रस्सी न बँधी हो।

वक्त बीतता है। जब शकूर और मेरे अब्बा यह देखने के लिए आते हैं कि क्या हो रहा है तो पुलिस उन्हें भी मेरे साथ उसी कमरे में बन्द कर देती है, जहाँ हम सारा दिन बोलने की हिम्मत किये बग़ैर बैठे रहते हैं। सूरज डूबने के वक्त पुलिस हमें गाड़ी में बैठा कर वापस गाँव ले आती है। कोई पूछ-ताछ नहीं; कोई "रस्म अदायगी" नहीं। हमेशा की तरह मुझे एहसास होता है कि मुझे धकेल कर किसी चीज़ से किनारे कर दिया गया है, लेकिन मुझे नहीं पता किस चीज़ से। जब मैं बच्ची थी, और फिर एक जवान औरत बनी, तो मैं बस इतना कर सकती थी कि ग़ौर से बड़ों की बातें सुनूँ ताकि समझ सकूँ वो किस चीज़ के बारे में बातें कर रहे हैं। मैं न तो सवाल पूछ सकती थी, न अपनी तरफ़ से बोल सकती थी - मैं सिर्फ़ दूसरे लोगों के शब्दों को टुकड़ा-टुकड़ा जोड़ कर यह समझने का इन्तज़ार कर सकती थी कि मेरे इर्द-गिर्द क्या हो रहा है।

अगले दिन सुबह के पाँच बजे पुलिस लौटती है और मुझे उसी जगह पर उसी कमरे में ले जाती है, जहाँ मैं सारा दिन गुज़ारती हूँ - सूरज ढलने पर फिर गाड़ी में बिठा

कर घर ले जाये जाने के लिए। तीसरे दिन फिर यही चीज़ होती है। वही कमरा, वही लम्बा दिन कुछ भी न करते हुए। मुझे पक्का यकीन तो नहीं है कि यह कैद इलाके में अख़बार वालों की मौजूदगी की वजह से है, लेकिन यह शक आगे चल कर आख़िरकार सच्चा साबित होने वाला है। मुझे अगर पता होता तो मैंने घर के बाहर आने से इनकार कर दिया होता। तीसरे और आख़िरी दिन मेरे अब्बा, शकूर और मुल्ला को उसी थाने में लाया जाता है। मैं उन्हें देख नहीं पाती, क्योंकि हम अलग-अलग कमरों में हैं। बाद में मुझे पता चलेगा कि एक सज़ायाफ़्ता लोगों के लिए है और दूसरा मुजरिमों के लिए : मैं सज़ायाफ़्ता लोगों वाले कमरे में रखी गयी थी, मुल्ला और मेरे घरवाले दूसरे कमरे में। बाद में वो मुझे बतायेंगे कि मुझसे पहले उन तीनों से इस बारे में पूछा गया था कि क्या हुआ था। आख़िरकार जब मुझे पूछ-ताछ के लिए ले जाया जाता है तो मुल्ला से मेरी मुलाकात होती है, जिसे बस इतना वक्त मिलता है कि मुझे ख़बरदार कर सके।

"होशियार रहना! जो भी तुम उन्हें बताती हो वो अपने लफ़्ज़ों में लिखते हैं।"

अब मेरी बारी है, और जैसे ही मैं तहसील के बड़े पुलिस अफ़सर के दफ़्तर में दाख़िल होती हूँ, मेरी समझ में आ जाता है।

"देख मुख़्तार, हम मस्तोइयों को बड़ी अच्छी तरह जानते हैं। वो बुरे आदमी नहीं हैं, लेकिन तू उनके ख़िलाफ़ इल्ज़ाम लगा रही है! ऐसा क्यों कर रही है तू? इसका कोई मतलब नहीं है।"

"मगर उन्होंने मेरे बाज़ू पकड़ लिये थे, और मैं मदद के लिए चिल्लायी थी, मैंने रहम की भीख माँगी थी..."

"बेवकूफ़ लड़की, तुझे कभी यह दावा नहीं करना चाहिए। जो कुछ तूने अब तक कहा है, वो मैं लिख लूँगा, और तुझे पहली रिपोर्ट पढ़ कर सुना दूँगा। लेकिन कल मैं तुझे अदालत ले जाने वाला हूँ, और जज के सामने तुझे ख़बरदार रहना होगा, बहुत ख़बरदार : तू ठीक-ठीक वही कहेगी जो मैं तुझे अब बता रहा हूँ। मैंने हर चीज़ तैयार कर ली है, और मुझे पता है यह तेरी बेहतरी के लिए है, और तेरे घरवालों की बेहतरी के लिए, और इससे ताल्लुक रखने वाले बाकी सब के लिए।"

"उन्होंने मेरी इज़्ज़त लूट ली।"

"तुझे यह नहीं कहना चाहिए कि तेरी इज़्ज़त लूटी गयी है।"

उसकी मेज़ पर एक काग़ज़ रखा है, जिस पर उसने पहले से कुछ लिख रखा है। मुझे कैसे पता चले वहाँ क्या लिखा है? काश, मैं पढ़ना जानती! उसने मुझे काग़ज़ पर नज़र डालते देख लिया है, लेकिन उसे कोई परवाह नहीं।

"तुझे अब्दुल ख़ालिक का नाम नहीं लेना है। तुझे यह नहीं कहना है कि तेरी इज़्ज़त लूटी गयी है। तुझे यह नहीं कहना है कि वही था जिसने कुछ किया था।"

"लेकिन वो वहाँ था।"

"ठीक है : तू चाहे तो सचमुच यह कह सकती है कि अब्दुल ख़ालिक वहाँ था। हर कोई यह जानता है। मिसाल के लिए, तू कहेगी कि अब्दुल ख़ालिक ने आवाज़ दी थी, 'लो, वहाँ रही वो! उसे माफ़ कर दो'।"

बस, इतना काफ़ी है। मैं आग-बबूला हो कर कमरे के बाहर निकल आती हूँ।

"मुझे पहले से हर चीज़ मालूम है जो मुझे कहनी है, क्योंकि मैं पहले ही उसे कह चुकी हूँ। मुझे आपकी बकवास नहीं सुननी, जनाब!"

और अचानक मैं गलियारे में हूँ, वहाँ से बाहर निकलने को तैयार! बुरी तरह ज़लील और नफ़रत से भरी हुई। मेरे सामने साफ़ है : यह पुलिसवाला चाहता है, मैं मस्तोइयों को ज़िना करने के बावजूद छूट जाने दूँ। उसने सोचा कि वह मुझे डरा कर सारे इल्ज़ाम वापस लेने के लिए मना लेगा। अच्छा, तो वो उनको बड़ी अच्छी तरह जानते हैं, सचमुच? और वो बुरे आदमी नहीं हैं? आधा गाँव जानता है वो कितने बुरे हो सकते हैं। मेरे चाचा को पता है और मेरे अब्बा को भी। शकूर और मैं उनका शिकार हैं। और जब वो बुरे आदमी नहीं बन रहे होते तो बस वो यही करते हैं कि मेरी जात-बिरादरी के लोगों को ज़मीन के कुछ टुकड़े ख़रीदने से रोक दें ताकि वो उन्हें ख़ुद ख़रीद सकें। जागीरदारों की ताकत यही होती है। वह ज़मीन से शुरू होती है और ज़िना पर ख़त्म होती है।

मैं ग़रीब और बे-पढ़ी-लिखी सही, और मैंने अपनी नाक कभी मर्दों के मामलों में नहीं घुसायी, लेकिन मेरे पास सुनने के लिए कान हैं और देखने के लिए आँखें। साथ ही बोलने के लिए आवाज़ - अपनी ख़ातिर बुलन्द करने के लिए।

एक पुलिस अफ़सर मेरे पीछे-पीछे चला आया है। वह मुझे मेरे बाप और मुल्ला से अलग ले जाता है, जो दूसरे दफ़्तर के दरवाज़े के सामने अब भी इन्तज़ार कर रहे हैं।

"इधर आ, मेरी बात सुन... ठण्ड रख, मुख़्तारन बीबी! सुन! तुझे वही कहना है जो हम तुझे कहने के लिए बताते हैं, क्योंकि यही तेरे लिए बेहतर है और हमारे लिए भी।"

मुझे जवाब देने का कोई मौका नहीं मिलता। एक और अफ़सर मेरे बाप, शकूर और मुल्ला को दफ़्तर में हाँक ले जाता है।

"ठीक है - हमें फ़ौरन इसे निपटा लेना चाहिए! तुम लोग इन पर दस्तख़त कर दो और हम रिपोर्ट भर देंगे।"

वह तीन सादे काग़ज़ उठाता है, और उन तीनों आदमियों के पीछे दरवाज़ा बन्द कर लेता है। तकरीबन फ़ौरन ही, वह फिर कमरे से बाहर निकलता है और मेरी तरफ़ आता है।

"तेरा बाप, भाई और मुल्ला राज़ी हो गये हैं, उन्होंने दस्तख़त कर दिये हैं, और

बाकी चीज़ें हम निपटा देंगे। चौथा सफ़ा तेरे लिए है, सो तू भी वही कर जो उन्होंने किया है : अँगूठे की निशानी लगा दे। और हम काग़ज़ पर ठीक वही लिख देंगे जो तूने बताया है, कोई दिक्कत नहीं। अपना अँगूठा यहाँ लगा दे।"

मुल्ला ने दस्तख़त कर दिये हैं, और मुझे उस पर भरोसा है। सो मैं अपने अँगूठे का निशान उस सादे काग़ज़ के नीचे लगाते हुए वही करती हूँ जो पुलिसवाला कहता है।

"बिलकुल ठीक! देखा, यह सिर्फ़ रस्म-अदायगी है। जल्द ही तुझे अदालत में ले जायेंगे, जज के सामने। यहीं रुक।"

सात बजे के करीब, सूरज ढलने के बाद, पुलिस की दो गाड़ियाँ हमें ले जाती हैं। मुल्ला पहली गाड़ी में जाता है, और हम तीनों दूसरी में। रास्ते में पुलिस को जज का एक सँदेसा मिलता है। वह उन्हें ख़बर करता है कि वह अदालत में नहीं आ सकता क्योंकि उसके घर मेहमान आये हुए हैं। वह कहता है कि हमें उसके घर लाया जाये। जब हम वहाँ पहुँचते हैं, वह अपना इरादा बदल देता है।

"नहीं, इससे काम नहीं चलेगा, यहाँ बहुत ज़्यादा लोग हैं। इस काम को अदालत में ही करना बेहतर होगा। इन्हें वहाँ ले जाओ, मैं तुम्हारे पीछे-पीछे आता हूँ।"

हम अदालत के सामने, बाहर खुले में खड़े हैं, और जब जज आता है, मैं देखती हूँ कि पुलिस की एक गाड़ी फ़ैज़ और चार और लोगों को साथ लायी है, जिन्हें मैं अँधेरे में साफ़-साफ़ देख नहीं पाती। सिर्फ़ फ़ैज़ है जिसे मैं पहचान पाती हूँ।

मुझे पता नहीं था कि उन्हें भी बुलवाया गया था। पुलिसवालों की वजह से मैं और मेरे घरवाले आपस में बात नहीं करते। शकूर उदास लगता है, बुरी तरह पस्त। उसके चेहरे के निशान अब भी बताते हैं उस पर क्या गुज़री, भले ही उसके घावों से ख़ून बहना बन्द हो गया है। अब तक, मेरे भाई ने मेरे बाप के सिवा और किसी को नहीं बताया कि उसके साथ क्या हुआ था। मुझे उम्मीद है कि वह भी अपनी हिफ़ाज़त कर सकेगा, लेकिन वह छोटा है, पुलिस और अदालत, दोनों का सामना करने के लिए बहुत छोटा, और सब एक ही रोज़ में। मैं सोचती हूँ कि क्या उसे भी, मेरी तरह, यह सलाह दी गयी है कि किसी पर इल्ज़ाम न लगाये।

ख़ुशकिस्मती से, मेरे अब्बा यहाँ हैं। वो उसी तरह हमारी हिफ़ाज़त करते हैं जैसे हमेशा करते आये हैं, कुछ दूसरे बापों की तरह नहीं, जो ख़ुद को मुसीबत से बचाने के लिए अपने बेटे या बेटी की कुरबानी देने से नहीं हिचकेंगे। जब उन्हें एहसास हो गया था कि मेरे शौहर के तौर पर जो आदमी चुना गया था वह एक बदनाम उजड्ड था जो अपने वादे नहीं पूरा करता था, तो मेरे अब्बू ने मेरे तलाक के सिलसिले में मेरी हिमायत की थी। वो कभी डावाँडोल नहीं हुए, और न मैं हुई, जब तक कि मैंने तलाक हासिल नहीं कर लिया जो सिर्फ़ शौहर ही दे सकता है। यह अपनी बीवी को छुटकारा देने का

उसका करार होता है और उसके बिना औरत का तलाक नहीं हो सकता : उसका मामला अदालत में जज के सामने पेश होना चाहिए, जो एक महँगा सौदा है, और वैसे भी हमेशा इसकी इजाज़त नहीं मिलती। मैंने फिर से अपनी आज़ादी अपने बाप और अपनी ज़िद की बदौलत हासिल की, जो हम औरतों के पास मर्दों के ख़िलाफ़ अकेला हथियार है।

मेरे बाप को वाकई यकीन था कि कबीले के एक कानून के मुताबिक, जो उसे पक्का एहसास था कि कहीं लिखा हुआ था, फ़ैज़ को गाँव की पंचायत के सामने रहम दिखाना चाहिए था। माफ़ी तो तब भी मुमकिन है जब किसी पुश्तैनी झगड़े में किसी का कत्ल हो जाये। लेकिन हकीकत में, यह कानून ताकतवर लोगों की तरफ़दारी करता है : वो चाहें तो किसी कसूर को माफ़ कर सकते हैं, लेकिन उनके लिए ऐसा करना ज़रूरी नहीं है और चूँकि मस्तोइयों की तादाद बाकी लोगों से ज़्यादा है, जिर्गे की बाग-डोर उनके हाथ में है।

मस्तोइयों ने भुलाया या माफ़ नहीं किया था, और न मैं करूँगी। जो कसूर उनके दावे के मुताबिक उनके ख़िलाफ़ किया गया है, वह उस तकलीफ़ के मुकाबले में कुछ भी नहीं है जो मेरे भाई और मैंने भोगी है। इज़्ज़त पर मस्तोइयों की कोई इजारेदारी नहीं है।

❒

मैं जज के सामने खड़ी हूँ : इस बार पहले मुझ से पूछ-ताछ हो रही है। वह रोबदार आदमी है, बहुत तहज़ीब वाला, और पहला अफ़सर जो एक और कुर्सी लाने को कहता है ताकि मैं बैठ सकूँ। अपनी जज की कुर्सी से मुझ पर रोब दिखाने की बजाय, वह मेरे सामने बैठ जाता है, मेज़ की दूसरी तरफ़। वह पानी की एक सुराही और कुछ गिलास भी मँगवाता है। हम दोनों ख़ुद को तरोताज़ा करते हैं, और मैं उसकी शुक्रगुज़ार हूँ, क्योंकि यह दिन बहुत सख़्त रहा है।

"याद रख मुख़्तार बीबी, तू एक जज के सामने है। सब कुछ जो हुआ वो मुझ को बिलकुल सच-सच बता दे। घबरा मत। मुझे जानना है कि तेरे साथ क्या किया गया। यहाँ तू मेरे और मेरे पेशकार के साथ अकेली है, जो वो सब कुछ लिखेगा जो तू मुझे बतायेगी। यह एक कानूनी अदालत है, और मैं यहाँ मालूम करने आया हूँ कि क्या हुआ। तू खुल कर बात कर सकती है।"

मैं अपनी कहानी शुरू करती हूँ, जितनी शान्ति से मैं कर सकती हूँ, लेकिन मेरा दिल मेरे हलक में आ गया है। अपनी उस बेइज़्ज़ती के बारे में बात करना बेहद तकलीफ़देह है, लेकिन जज मेरा हौसला बँधाता है।

"ध्यान रख," वह मुझे याद कराता रहता है। "मुझे सच बता। जल्दबाज़ी मत कर, घबरा मत। मुझे सब कुछ बता।"

मुझे उस पर सचमुच यकीन होता है। इस आदमी के बात करने के ढंग से मुझे लगता है कि यह बेलाग और खरा है। उसने मुझे पुलिसवालों की तरह धमकाने या मेरे मुँह में अपनी बातें रखने से शुरुआत नहीं की। उसे सिर्फ़ सच चाहिए, और वह ग़ौर से सुनता है, हिकारत के बिना। जब भी वह देखता है कि मैं बेचैन हो रही हूँ, जज़्बात की वजह से काँपते या पसीना-पसीना होते हुए, वह मुझे रोक देता है।

"अपना वक्त ले, आराम से बात कर। पानी का घूँट भर ले।"

❒

पूछ-ताछ डेढ़ घण्टा चलती है। उस नामुराद अस्तबल में जो हुआ था, जज उसकी एक-एक तफ़सील जानना चाहता है। मैं उसे हर चीज़ बताती हूँ, चीज़ें जो मैंने अभी तक किसी को नहीं बतायी हैं, ख़ुद अपनी माँ को भी नहीं। फिर वह जा कर जजों वाली कुर्सी पर बैठ जाता है।

"तूने मुझे सच बता कर अच्छा किया। अब ख़ुदा फ़ैसला करेगा।"

वह लिखना शुरू करता है, ख़ामोशी में, और मैं इतनी पस्त हो गयी हूँ कि मैं अपना सिर मेज़ पर टिका देती हूँ। मैं अब और सवाल नहीं चाहती। मैं सोना चाहती हूँ। घर जाना चाहती हूँ।

फिर जज मुल्ला अब्दुल रज़्ज़ाक को बुलवा भेजता है, जिससे वह उसी इज़्ज़त से पेश आता है, जो उसने मेरे सिलसिले में दिखायी थी।

"आपको मुझे सच बताना होगा। आप एक ज़िम्मेदार आदमी हैं। मुझ से कुछ मत छिपाइए।"

मुल्ला बोलना शुरू करता है, लेकिन उसकी आवाज़ जल्द ही मेरे लिए मद्धम होती चली जाती है : थकान की मारी, मैं आख़िरकार अचानक नींद में लुढ़क जाती हूँ। फिर मुझे कुछ याद नहीं कि आगे कौन आया, क्या कहा गया - सब कुछ धुँधला-धुँधला है। मुझे तब तक होश नहीं आया जब तक मेरे बाप ने आ कर मुझे नहीं जगाया।

"मुख़्तार, हम जा रहे हैं, चल उठ! हमें जाना है।"

जैसे ही मैं अदालत के बाहर निकलने को थी, जज उठा, मेरे पास आया, और उसने तसल्ली-भरा हाथ मेरे सिर पर रख दिया।

"हार मत मानना। हिम्मत से डटे रहना तुम सब!"

पुलिस आख़िरकार हमें घर ले जाती है। जब हम जाते हैं तो फ़ैज़ और उसके साथ के दूसरे लोग मुझे नज़र नहीं आते, और मुझे पता नहीं चलता कि हमारे बाद उनसे पूछ-ताछ की गयी थी या नहीं। बहरहाल, अगले दिन घर के सामने अख़बार वाले मौजूद होते हैं, अजनबी लोगों के साथ, इन्सानी हकों के लिए लड़ने वाले अलग-अलग

संगठनों से आयी औरतें और मर्द। मुझे नहीं मालूम वो यहाँ कैसे पहुँचे या किसने उन्हें ख़बर दी। मेरी मुलाकात बी.बी.सी. के एक बन्दे से भी होती है, एक पाकिस्तानी जो इस्लामाबाद से सारा रास्ता तय करके आया है। इतने सारे अजनबी लोग हैं कि मैं हिसाब नहीं रख पाती कि वो किस की नुमाइन्दगी कर रहे हैं। अगले चार दिन तक लगातार आना-जाना लगा रहता है, और हमारे छोटे-से घर ने कभी ऐसी चहल-पहल नहीं देखी - मुर्ग़ियाँ आँगन में दौड़ती हुईं, कुत्ता भौंकता हुआ, और यह सारी गहमा-गहमी मेरे इर्द-गिर्द हो रही है।

मैं बिना झिझके खुल कर बोलती हूँ, सिवा तब जब कोई बहुत ज़्यादा ब्योरे माँगता है। मुझे एहसास हो गया है कि गाँव में यह शोर-शराबा ही मुझे मेरे पड़ोसियों की धमकियों से बचा सकता है, जिनके खेत हमारे खेतों से दिखायी देते हैं। अगर इतने सारे लोग मेरे बारे में पता लगाने आये हैं तो सिर्फ़ इसीलिए कि मैं मुल्क के अपने इलाके की उन तमाम दूसरी औरतों के लिए खड़ी हूँ, जिनके साथ ज़बरदस्ती की गयी है। पहली बार एक औरत एक निशानी बन गयी है।

और इन अजनबियों से मुझे ज़िना के दूसरे मामलों, ज़ोर-ज़बरदस्ती के दूसरे कारनामों के बारे में पता चलता है, जिन्हें अख़बारों में लिखा गया है। कोई मुझे एक रिपोर्ट पढ़ कर सुनाता है, जिसे अलग-अलग संगठनों ने पाकिस्तानी अधिकारियों के सामने पेश किया है और जिसमें दावा किया गया है कि जून के महीने में बीस से ज़्यादा औरतों के साथ तिरपन मर्दों ने ज़बरदस्ती ज़िना किया है। दो औरतें मर चुकी हैं। एक को उसके हमलावरों ने कत्ल कर दिया था ताकि वह उनके ख़िलाफ़ आवाज़ न उठा सके, जबकि दूसरी औरत ने, इस बात से मायूस हो कर कि पुलिस उसके साथ ज़िना करने वालों को गिरफ़्तार नहीं कर पायी थी, 2 जुलाई को ख़ुदकुशी कर ली थी - तकरीबन उसी दिन जब मेरे साथ जज ने पूछ-ताछ की थी। इस सब से मेरा डटे रहने, इन्साफ़ और सच की तलाश करने का हौसला और मज़बूत होता है, पुलिस के दबाव और ऐसी ''रवायत'' के बावजूद जो चाहती है कि औरतें ख़ामोशी से तकलीफ़ सहें जबकि मर्द अपनी मनमानी करें।

ख़ुदकुशी मेरे दिमाग़ में अब सबसे आख़िरी चीज़ है।

''हमारे मुल्क की आधी औरतें ज़बरदस्ती का शिकार हैं,'' एक जोशीली पाकिस्तानी औरत मुझे समझाती है, ''उन्हें या तो ज़बरदस्ती शादी में धकेल दिया जाता है या उनकी इस्मत लूट ली जाती है या फिर मर्दों के बीच ख़रीद-फ़रोख़्त की चीज़ों की तरह इस्तेमाल किया जाता है। औरतें क्या सोचती हैं, इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता, क्योंकि उन्हें सोचने की आज़ादी ही नहीं होती। उन्हें इस बात की इजाज़त नहीं दी जाती कि वो पढ़ना या लिखना सीखें, यह पता लगायें कि उनके इर्द-गिर्द की दुनिया कैसे काम करती है। इसीलिए बे-पढ़ी-लिखी औरतें अपनी हिफ़ाज़त नहीं कर सकतीं : उन्हें अपने हकों के बारे में कुछ

नहीं पता होता और उनकी बग़ावत को नाकाम करने के लिए उनके मुँह में शब्द ठूँस दिये जाते हैं। लेकिन हम तुम्हारी हिमायत करते हैं! बस, हिम्मत रखो...''

अफ़सरों ने मेरे साथ ठीक ऐसा ही करने की कोशिश की थी : ''तुझे वही कहना है जो हम तुझे कहने के लिए बताते हैं, क्योंकि यही तेरे लिए बेहतर है...''

एक पत्रकार मुझे बताता है कि अख़बारों ने फ़ैज़ के ख़िलाफ़ एक पिछली शिकायत भी खोज निकाली है, जिसे एक माँ ने दर्ज कराया था, जिसकी जवान बेटी को उसने उसी साल कुछ पहले अग़वा कर लिया था, बार-बार उसकी इस्मत लूटी थी और तभी छोड़ा था जब स्थानीय अख़बारों में ख़ुद मेरे इल्ज़ामों की ख़बर छपी थी।

इतनी सारी जानकारी से मेरा सिर घूम रहा है, और यहाँ मेरे गिर्द इतने सारे नये चेहरे इकट्ठा हैं...

❑

अख़बार मेरी तरफ़ इतना ध्यान सिर्फ़ इसलिए दे रहे हैं, क्योंकि मैं अपना मामला अदालत में ले जा रही हूँ। और एक तरह से, मैं उस कहानी का आम चेहरा हूँ, जो हज़ारों पाकिस्तानी औरतों से ताल्लुक रखती है।

मैं बेहद ख़ुश हूँ - मुझे महसूस होता है कि मैं अपने इर्द-गिर्द की चीज़ों को आख़िरकार ठीक उसी शक्ल में देख सकती हूँ जैसी वो सचमुच हैं। मेरे गाँव के आगे, सूबे के आगे, दूर इस्लामाबाद तक एक पूरी दुनिया है जिसके बारे में मैं कभी नहीं जानती थी। जब मैं बच्ची थी, मेरे सबसे लम्बे सफ़र पास-पड़ोस के गाँवों तक ही होते थे जहाँ हम रिश्तेदारों या घरवालों के दोस्तों से मिलने जाया करते थे। मुझे एक मामे की याद है जो कभी-कभी हमारे यहाँ रहने को आया करता था। वह जब एक छोटा-सा लड़का था तभी से कराची में रहता था। जब वह समन्दर, हवाई-जहाज़ों, पहाड़ों और दूर-पार से आने वाले बेगिनती लोगों की बातें करता था तो हम उसकी बातें सुना करते थे, मैं और मेरी बहनें। मैं सात या आठ साल की रही हूँगी, और मुझे उन सारी अजीब चीज़ों की कल्पना करने में मुश्किल होती थी। मुझे पता था कि यहाँ, अपने गाँव में, हम पाकिस्तान में थे, और हमारे मामा का कहना था कि पच्छिम में और भी कई मुल्क थे, जैसे यूरोप में। रही मैं, तो मैंने सिर्फ़ अंग्रेज़ों के बारे में सुना था जिन्होंने हमारे मुल्क पर कब्ज़ा किया था, लेकिन मैंने उनमें से किसी को कभी देखा नहीं था। और मुझे ख़याल भी नहीं था कि पाकिस्तान में ''फ़िरंगी'' भी रहते थे। दक्खिनी पंजाब में हमारा गाँव इतना दूर है, किसी भी शहर से इतने फ़ासले पर, और मैंने उस दिन तक कभी टेलिविज़न भी नहीं देखा था, जब तक कि हमारा कराची वाला मामा अपने साथ एक टेलिविज़न नहीं ले आया... तस्वीरों ने मुझे मोह लिया था। मुझे समझ में नहीं आता था कि उस

अजीबो-ग़रीब डिब्बे के पीछे कौन था जो उस वक्त बोल रहा था जब मैं भी बोल रही थी, हालाँकि कमरे में मेरे सिवा और कोई नहीं था।

ये कैमरे जो मेरी फ़िल्म बना रहे हैं : ये टेलिविज़न हैं... ये फ़ोटोग्राफ़र : ये अख़बार वाले हैं...

गाँव में लोग कहते हैं कि मुझे अख़बार वाले "उठा ले गये हैं," जो मुझे ऐसे मज़मून लिखने के लिए इस्तेमाल कर रहे हैं, जिनसे पंजाबी अफ़सरों और अधिकारियों की शर्मिन्दगी बढ़ती जा रही है। और मुझे ख़ुदकुशी करने या ख़ुद को ज़िन्दा दफ़्न कर लेने की बजाय, ऐसा करने पर शर्म आनी चाहिए। लेकिन ये सारे लोग जो बाहर की सब जगहों से यहाँ आये हैं, मुझे अजीबो-ग़रीब चीज़ें सिखा रहे हैं। मिसाल के लिए, यह कि मेरे भाई और फिर मेरे साथ की गयी ज़बरदस्ती दरअसल हमें इस इलाके से भगाने के लिए चली गयी मस्तोइयों की एक चाल थी। गूजरों से मस्तोइयों को चिढ़ होती है, जिन्हें अच्छा नहीं लगता जब हमारी जात के किसान वो खेत ख़रीदते हैं जो उनकी मिल्कियत हैं। मुझे पता नहीं कि यह सच है या नहीं, लेकिन मेरे घर के कुछ लोगों का ऐसा ही यकीन है, क्योंकि हम तादाद में कम हैं, मस्तोइयों से ग़रीब हैं और हमारी सियासी ताकत भी कम है, इसलिए किसी गूजर के लिए कोई ज़मीन ख़रीदना बहुत मुश्किल है।

और अख़बारनवीसों के साथ गहमा-गहमी के इन चार दिनों ने मेरे सामने यह बात बड़ी बेरहमी से साफ़ कर दी है, आख़िरकार, कि मैं अपने बे-पढ़े-लिखे होने की वजह से कितनी अपाहिज हूँ और इस वजह से भी कि मैं ज़रूरी चीज़ों के बारे में ख़ुद अपना मन नहीं बना पाती। इससे मुझे अब सचमुच तकलीफ़ होती है, अपने घरवालों की निस्बतन ग़रीबी से ज़्यादा। मैं "निस्बतन" कहती हूँ, क्योंकि हमारे पास कम-से-कम खाने को तो काफ़ी है। और सहारे के लिए हमारे पास दो बैल, एक गाय, आठ बकरियाँ और एक गन्ने का खेत है। लेकिन, मुझे ग़ुस्सा दरअसल इस बात पर आता है कि मैं लिखे हुए शब्द के बारे में कुछ नहीं जानती। कुरान ही मेरा अकेला ख़ज़ाना है : वह मेरे अन्दर लिखी हुई है, मेरी याददाश्त में, और वही एक किताब है जो मेरे पास है।

इतना ही नहीं, वो बच्चे जिन्हें मैं कुरान पढ़ना सिखाती थी, ठीक वैसे जैसे मुझे सिखाया गया था, अब मेरे पास नहीं आते। एक वक्त था जब एक टीचर की हैसियत से मेरी इज़्ज़त थी, लेकिन अब गाँव मुझे दुर-दुर करता है : बहुत सारी अफ़वाहें, बहुत सारे बड़े शहर के अख़बार वाले, बहुत सारे फ़ोटोग्राफ़र और ख़बरों वाले कैमरे। बहुत सारी बदनामी। कुछ लोगों के लिए मैं करीब-करीब एक हीरोइन हूँ, जबकि दूसरों के लिए मैं कोढ़ी हूँ, एक झूठी जो मस्तोइयों के लिए मुसीबत खड़ी करने की जुर्रत कर रही है। लिहाज़ा, लगता है कि लड़ने के लिए मुझे सब कुछ गँवाना पड़ेगा - मेरी

नेकनामी, मेरी इज़्ज़त, वह सब कुछ जो कभी मेरी ज़िन्दगी थी। लेकिन यह महत्वपूर्ण नहीं है।

मुझे इन्साफ़ चाहिए।

❐

पाँचवें दिन, ज़िले का बड़ा अफ़सर मुझे बुलवा भेजता है। दो पुलिसवाले मुझे, मेरे बाप, शकूर और मुल्ला को अपने साथ मुज़फ़्फ़रगढ़ ले जाने के लिए आते हैं। मुझे उम्मीद थी कि फ़िलहाल सारी "रस्म-अदायगियाँ" पूरी हो चुकी हैं और अब इन्साफ़ अपना काम करेगा, लेकिन जब मैं अफ़सर के दफ़्तर पहुँचती हूँ, मुझे वहाँ थाने के दो अफ़सर मिलते हैं - वही जो चाहते थे कि मैं वह कहूँ जो "ख़ुद मेरी बेहतरी के लिए" था। क्या ज़ोर-दबाव का चक्कर फिर से शुरू हो जायेगा? छोटी-सी चीज़ भी अब मुझे बेचैन कर देती है, और मेरे चेहरे ने मेरे अन्देशों को साफ़-साफ़ जाहिर कर दिया होगा। मैंने अपने बाप और मुल्ले का भरोसा किया था जब मैंने पुलिसवाले के काग़ज़ पर नीचे अपना अँगूठा लगाया था। वह काग़ज़ अब मुझे यकीन है कि एक जाल था।

ज़िलेदार दोनों अफ़सरों को बाहर जाने के लिए कहता है ताकि वह मुझसे अकेले में बात कर सके।

"पुत्तर, क्या तुझे इन आदमियों से कोई दिक्कत है? उन्होंने क्या तेरे साथ कोई बेइन्साफ़ी की है?"

"मुझे कोई दिक्कत नहीं है, सिवा इसके कि इनमें से एक ने ज़ोर दिया था कि मैं एक सादे काग़ज़ पर अपना अँगूठा लगाऊँ। उसने एक और काग़ज़ मेरे भाई, मेरे बाप और मुल्ला के लिए तैयार किया था। और हमें यह भी नहीं पता कि उन काग़ज़ों पर क्या लिखा था।"

"वाकई?"

ज़िलेदार हैरान लगता है, और मुझे ग़ौर से देखता है।

"क्या तुझे उस आदमी का नाम मालूम है जिसने ऐसा किया था?"

"नहीं, पर मैं उसे पहचान सकती हूँ।"

"ठीक है। मैं उन दोनों को वापस बुलाऊँगा, और तू उसे इशारे से मुझे बता देना।"

वह दोनों आदमियों को अपने दफ़्तर में वापस बुलवा भेजता है। मुझे ख़याल भी नहीं था कि वो नायब ज़िलेदार थे। बहरहाल, मैं उस आदमी की तरफ़ इशारा करके बता देती हूँ, जिसके बाद ज़िलेदार बिना कुछ कहे उन्हें बाहर भेज देता है।

"मैं उसे देख लूँगा," वह मुझसे कहता है। "लगता है जो फ़ाइल उन्होंने मेरे लिए तैयार की थी, उसे वो लाना भूल गये हैं - वैसे भी, इन्हें अच्छी तरह नहीं पता उसमें क्या

कुछ लिखा है। मैंने उनसे कहा है, उसे ढूँढ कर मेरे पास लायें। तुझे बाद की किसी तारीख़ में फिर यहाँ वापस आने के लिए कहा जायेगा।''

❒

तीन या चार दिन बाद, हमारे इलाके की पुलिस हमें बताने आती है कि अगली सुबह हमें एक और पूछ-ताछ के लिए ले जाया जायेगा।

इस बार मुज़फ़्फ़रगढ़ में हमारी मुलाकात ज़िलेदार से नहीं, बल्कि वहीं के हस्पताल के एक डॉक्टर से होती है। मस्तोइयों ने, लगता है, अब अपने इल्ज़ाम दर्ज कराने का फ़ैसला किया है, और सलमा को अपने साथ ले आये हैं ताकि वह पुलिस को बता सके कि मेरे भाई ने उसके साथ ज़बरदस्ती की थी, और हकीकत में वह तकरीबन उसी वक्त पहुँचती है जब हम, पुलिस की एक अलग गाड़ी में। डॉक्टर, सलमा और शकूर, दोनों की जाँच करेगा। रही मैं, तो मुझे अभी तक कोई अन्दाज़ा नहीं है कि मैं यहाँ क्यों हूँ। औरत होने के नाते, मुझे अच्छी तरह पता है कि सलमा की जाँच करने के लिए कुछ ज़्यादा ही देर हो गयी है। मेरी जाँच 30 जून को एक डॉक्टर ने की थी, घटना के आठ दिन बाद, और मुझे यकीनन पुलिस के पास उससे पहले ही जाना चाहिए था, मगर उस वक्त तो मैं ऐसा करने के काबिल ही नहीं थी।

जो कपड़े मैंने पहन रखे थे, उन्हें पुलिस के ले जाने से पहले ही, गुनाह की शर्मिन्दगी को दबाने के लिए मेरी माँ के हुक्म पर धो दिया गया था, लेकिन मुझे बाद में चल कर पता चला कि जाँच करने वाली डॉक्टर ने उस बात की ताईद की थी, जो मैं पहले ही जानती थी, कि मुझे अन्दरूनी चोटें पहुँची थीं, और यह कि उसे पक्का यकीन था कि मेरे साथ ज़बरदस्ती की गयी थी, हालाँकि उसने उस वक्त इस बारे में मुझे कुछ भी नहीं कहा था। मुझे यह जान कर ख़ुशी हुई थी कि डॉक्टरनी की जाँच ने उसे यह कहने की छूट दे दी थी कि न तो मैं बदहवास थी, न पागल! हालाँकि, बेइज़्ज़ती के निजी ज़ख़्मों का अन्दाज़ा कोई नहीं लगा सकता, और चाहे ख़ुद्दारी की वजह से हो या शर्मिन्दगी की वजह से, मैं किसी हालत में ख़ुद को उनके बारे में बात करने के लिए राज़ी नहीं कर सकती।

रही सलमा, जिसका दावा है कि उसके साथ 22 जून को ज़िना किया गया, तो जाँच के लिए कुछ ज़्यादा ही देर हो चुकी है। अगर वह कुँआरी नहीं है, जिसके बारे में मुझे शक है। लिहाज़ा, डॉक्टर शकूर को एक आसान-सी जाँच के लिए बुलाता है। उसका अन्दाज़ा है कि मेरा भाई ज़्यादा-से-ज़्यादा बारह-तेरह साल का है, जो मेरे बाप को ख़ुद मालूम था।

मैं, कुदरती तौर पर, सलमा की जाँच के दौरान मौजूद नहीं हूँ, लेकिन बाद में चल

कर गाँव की बातों से मुझे पता चलता है कि जब डॉक्टर उसे बताती है कि वह शकूर की जाँच के नतीजों को उसकी जाँच के नतीजों से मिला कर देखेगी तो वह सुर बदल लेती है।

''शकूर?'' वह चिल्लाती है। ''नहीं, वो नहीं था जिसने मुझसे ज़बरदस्ती की! उसने तो मेरी बाँहें पकड़ रखी थीं जब उसके बड़े भाई और तीन चचेरे भाइयों ने मेरी इज़्ज़त लूटी।''

डॉक्टर उसे हैरानी से घूरती है।

''क्या बक रही है तू? बारह साल के लड़के में इतनी ताकत होगी कि वो तुझे बाँहों से पकड़े रखे, अकेले, जब बाकी तीन तुझसे ज़बरदस्ती कर रहे हों? यह कोई मख़ौल है क्या?''

फिर भी डॉक्टर उसकी जाँच करते हैं। वो उसकी उमर का अन्दाज़ा तकरीबन सत्ताइस का लगाते हैं, और यह दर्ज करते हैं कि वह करीब-करीब तीन साल से मर्दों के साथ सोती रही है, जिस दौरान एक बार उसका हमल गिर चुका है। नतीजे के तौर पर, डॉक्टर महसूस करते हैं कि उसके आख़िरी शारीरिक सम्बन्ध 22 जून के फ़र्ज़ी ज़िना-बिल-जब्र से पहले हुए थे।

मुझे ठीक-ठीक पता नहीं कि डॉक्टर अपने नतीजों पर कैसे पहुँचते हैं, लेकिन मुझे हर रोज़ ऐसी चीज़ों के बारे में और भी मालूम होता रहता है। मेरे भाई के सिलसिले में उन्होंने जो तरीका इस्तेमाल किया, उसे डी.एन.ए. टेस्ट कहते हैं। और शकूर ने सलमा के साथ ज़िना नहीं किया। वह तो संजोग से ठीक उसी वक्त गन्ने के खेत में था जब सलमा भी वहाँ थी, और मस्तोइयों ने इसका फ़ायदा उठाया। अख़बार सारे-के-सारे कहते हैं कि वह उससे इश्क करता था। ख़ैर, लोगों को किसी पर इश्कबाज़ी का इल्ज़ाम लगाने के लिए एक निगाह ही काफ़ी होती है। लड़कियों से उम्मीद की जाती है कि वो शर्मीलेपन से अपनी आँखें नीची रखेंगी, लेकिन सलमा - वह जो चाहती है, करती है। उसे कोई डर नहीं कि लोग उसे देखते हैं, और वह तो यह कोशिश भी करती है कि लोग उसे देखें।

जो ज़िन्दगी मैं अब तक गुज़ारती आयी हूँ, कुरान सिखाते हुए, वह इन सारे ग़लीज़ मामलों से दूर एक और ही दुनिया थी। मेरे घरवालों ने मुझे और मेरी बहनों को इस तरह पाला-पोसा कि हम रवायतों की इज़्ज़त करें, और सभी छोटी लड़कियों की तरह मैं जब दस साल की थी तभी मुझे मालूम हो गया था कि लड़कों से बात करने की मनाही थी। मैंने इस पाबन्दी को कभी नहीं तोड़ा। मैंने शादी के दिन से पहले कभी अपने शौहर का चेहरा नहीं देखा था। ख़ुद मैंने उसे नहीं चुना होता, लेकिन मैं अपने घरवालों की इज़्ज़त करती हूँ, और इस मामले में मैंने उनकी इच्छाओं का पालन किया था। दूसरी तरफ़, सलमा ग़ैर-शादीशुदा है और उसे पाक-साफ़ और बेदाग़ होना चाहिए था, और उसके घरवाले कुछ

खिचड़ी पका रहे हैं : पहले उन्होंने मेरे भाई पर गन्ने चुराने का इल्ज़ाम लगाया, फिर सलमा के साथ सोने का, और अब दावा कर रहे हैं कि उसने ख़ुद उसके साथ ज़बरदस्ती नहीं की, बल्कि मेरे बड़े भाई और कुछ चचेरे भाइयों ने उसके साथ ज़्यादती की... मैं हिम्मत बनाये रखने की कोशिश करती हूँ, लेकिन कभी-कभी इन सारे झूठों को ले कर मायूस भी हो जाती हूँ। मुझे इन्साफ़ कैसे हासिल हो सकता है जब ये लोग, मेरे पड़ोसी, लगातार अपनी कहानी में कसीदे काढ़ते रहते हैं, उस चद्दर की तरह जिस पर हर रोज़ एक नया रंग चढ़ जाता है।

मैं जानती हूँ कि मेरे छोटे-से भाई और मुझ पर क्या गुज़री है।

शकूर ने जज को बताया था कि उस कुनबे के तीन लोगों ने उसे पकड़ कर उसके साथ बुरा काम किया था, और यह कि वह चिल्लाया था, "मैं अपने अब्बा को बताने जा रहा हूँ, मैं पुलिस को बता दूँगा।" तभी उन आदमियों ने उसे धमकी दी थी कि अगर उसने मुँह खोला तो वो उसे मार देंगे। फिर वो उसे अपनी हवेली में घसीट ले गये, उसे एक कमरे में बन्द कर दिया, उसे मारा-पीटा, उसके साथ फिर ग़लत काम किया, और उसे पुलिस को तभी सौंपा जब मेरे बाप ने दख़ल दिया जो घण्टों से उसे ढूँढता रहा था।

यहाँ पाकिस्तान में किसी औरत के लिए यह साबित करना मुश्किल है कि उसके साथ बलात्कार किया गया है, क्योंकि कानून के मुताबिक उसे जुर्म के चार चश्मदीद मर्द गवाह पेश करने होते हैं। बदकिस्मती से, मेरे और मेरे भाई, दोनों के साथ किये गये बलात्कार के चश्मदीद गवाह तो सिर्फ़ वही हैं जो ख़ुद मुजरिम भी हैं।

❐

जब इस सुबह पुलिस आयी थी तो मैंने सोचा था कि वो सिर्फ़ मुझे ज़िलेदार से मुलाकात के लिए ले जा रहे हैं, लेकिन इसकी बजाय वो मुझे और शकूर को गाड़ी में बिठा कर हस्पताल ले आये थे। अब मुझे पास के एक दफ़्तर में ले जाया जाता है जो जेनरल काउन्सिल के सदर का है और जहाँ मुझे एक औरत मेरा इन्तज़ार करती हुई मिलती है।

वह सरकार में वज़ीर है और उसे हिदायत दी गयी है कि वह मुझे 5,00,000 रुपये का एक चेक सौंपे! मैं मिज़ाज से कुछ-कुछ शक्की हूँ, और हाल की घटनाओं ने मुझे और भी होशियार रहने को मजबूर कर दिया है। मुझे डर लगता है कि यह चेक एक जाल है।

कुछ पलों के लिए उस औरत की तसल्ली देने वाली बातें सुनते हुए, मैं उसके हाथ में रखी पेशकश को देखती हूँ। मैं चेक ले लेती हूँ, नम्बरों को देखे बिना ही : उसने जो कहा, वह मैंने सुना और वह होश गुम कर देने वाला है। 5,00,000 रुपये! मैंने कभी इतनी बड़ी रकम के बारे में सोचा भी नहीं है। कोई इससे इतनी सारी चीज़ें ख़रीद सकता

है... कार या ट्रैक्टर, कौन जाने क्या... मेरे परिवार में कौन है जिसके पास कभी 5,00,000 रुपये हुए हैं? या जिसे कभी एक चेक मिला है?

कुदरती तौर पर, सोचे बिना मैं उस काग़ज़ को मसल कर फ़र्श पर गिरा देती हूँ, उस मिनिस्टर बीबी के प्रति किसी गुस्ताख़ी के भाव से नहीं, बल्कि उस चेक के लिए हिकारत की वजह से।

"मुझे इसकी ज़रूरत नहीं।"

कुछ कहा नहीं जा सकता : अगर यह औरत मुझे इतने सारे पैसे दे रही है तो शायद उसे किसी ने मामले को रफ़ा-दफ़ा करने के लिए भेजा हो सकता है। लेकिन वह इसरार करती है - एक बार, दो बार, तीन बार - कि मैं चेक ले लूँ। उसने अच्छे कपड़े पहन रखे हैं, वह इज़्ज़तदार औरत नज़र आती है और उसकी आँखें झूठों से धुँधलायी नहीं लगतीं।

"मुझे चेक की ज़रूरत नहीं है," मैं आख़िर में उससे कहती हूँ। "मुझे एक स्कूल चाहिए।"

वह मुस्कराती है।

"स्कूल?"

"हाँ, अपने गाँव की लड़कियों के लिए एक स्कूल। हमारे पास कोई स्कूल नहीं है। अगर आप सचमुच मुझे कुछ देना चाहती हैं तो मेरा यह कहना है : मुझे चेक नहीं चाहिए, लेकिन मुझे अपने गाँव के लिए एक लड़कियों का स्कूल ज़रूर चाहिए।"

"मैं समझती हूँ, और हम तुम्हें एक स्कूल बनाने में भी मदद देंगे, लेकिन शुरुआत करने के लिए कम-से-कम यह चेक तो कबूल कर लो। इसे अपने अब्बा के साथ बाँट लेना। मैं वादा करती हूँ कि हम एक स्कूल भी बनायेंगे। इस बीच, तुम्हें वकील को देने के लिए पैसों की ज़रूरत पड़ेगी, जिसमें काफ़ी ख़र्चा आयेगा।"

मुझे यह मालूम है। औरतों के हकों के लिए लड़ने वाले एक संगठन से जुड़े एक पाकिस्तानी ने मुझे बताया था कि एक अच्छे वकील की फीस 25,000 रुपये हो सकती है। और यह कि मुकदमा लम्बे अर्से तक चल सकता है, सो वकील शायद और भी पैसे माँग सकता है। इसीलिए वो गाँव वाले जिनके वसीले ज़्यादा नहीं होते, जिर्गे से फ़ैसला करने की दरख़्वास्त करते हैं। कबीले की पंचायत फ़रीकों को सुनती है, एक हल सुझाती है और मामला उसी दिन निपट जाता है। आम तौर पर जिर्गे में कोई झूठ नहीं बोल सकता, क्योंकि गाँव में सब एक-दूसरे को जानते हैं, और जिर्गे का सरदार ऐसा फ़ैसला सुनाता है जिसका मकसद यह पक्का करना होता है कि बस्ती के लोग ज़िन्दगी भर के लिए एक-दूसरे के दुश्मन न बन जायें। (यह मेरी बदकिस्मती थी कि जिस आदमी ने मुल्ला की सलाह के ख़िलाफ़ मेरे मामले में फ़ैसला सुनाया,

वह फ़ैज़ था। और उसने हम सब के बीच सुलह-समझौता कराने की बजाय गाँव को बाँट दिया था।)

फिर वह औरत मुझसे कुछ सवाल करती है, बड़ी नरमी से, और चूँकि वह औरत है और उसके चेहरे पर ईमानदारी है, इसलिए मेरे अन्दर उसे यह बताने की हिम्मत आ जाती है कि मेरी ज़िन्दगी ख़तरे में है। लोग मुझे यह नहीं बता रहे कि मेरे हमलावर क्या कर रहे हैं, लेकिन मुझे मालूम हुआ है कि कुछ दिन तक थाने पर हिरासत में रखे जाने के बाद वो छोड़ दिये गये हैं। मस्तोइयों के सारे आदमी वापस घर पहुँच गये हैं, हमारे घर को जाने वाले रास्ते के ठीक आगे, सिर्फ़ एक चीज़ का इन्तज़ार करते हुए : हमें तबाह कर देने का।

"वो हमारे पड़ोसी हैं, उनका घर खेत की दूसरी तरफ़ है। मैं अब सड़क पर चलने की हिम्मत नहीं कर सकती। मुझे लगता है कि उन्होंने मुझ पर नज़र रखी हुई है... "

❒

वह मुझसे कोई वादा नहीं करती, लेकिन मैं देख सकती हूँ कि वह हालात को समझती है। यह सब कुछ इतनी जल्दी हुआ है। जितना मैं उस वक्त अन्दाज़ा कर सकती हूँ, उससे भी ज़्यादा तेज़ी से। पिछले चार रोज़ के दौरान अख़बारों ने मेरी कहानी को इतनी अहमियत दी है कि इस्लामाबाद में सरकार समेत सारा मुल्क मेरे बारे में जानता है। वह बीबी जिसने मुझे अभी-अभी चेक पेश किया है और गाँव में स्कूल बनाने के सिलसिले में मेरी मदद करने का वादा किया है, कौमी वज़ीर है जिसे ख़ुद राष्ट्रपति ने भेजा है। मेरी तस्वीर हर जगह है, जबकि मेरी कहानी यहाँ पाकिस्तान के हर अख़बार में और बाहरी मुल्कों के कई अख़बारों में छप चुकी है। ऐमनेस्टी इण्टरनैशनल को भी मेरे बारे में पता है।

4 जुलाई 2002 को मानवाधिकारों के संगठनों का एक प्रदर्शन इन्साफ़ की माँग करता है। अदालत के जज मेरी शिकायत को दर्ज करने में देर करने और मुझसे सादे काग़ज़ पर अँगूठा लगवाने के लिए स्थानीय पुलिस की आलोचना करते हैं। पुलिस ने मामला 30 जून को दर्ज किया था। जिस जज ने मुझसे बातचीत की थी, उसने अख़बारों से यही कहा था और समझाया था कि यह नामुमकिन था कि मेरे बढ़ कर आगे आने का फ़ैसला करने से पहले ही पुलिस की नज़र में यह घटना न आयी हो, और यह कि जिर्गे का फ़ैसला शर्मनाक था। कानून के वज़ीर ने भी बरतानिया के टेलिविज़न पर यह कहा था कि मस्तोई कबीले की अगुआई में जिर्गे का फ़ैसला आतंकवादी कार्रवाई माना जाना चाहिए, कि कबीले की पंचायत अपने आप में एक ग़ैर-कानूनी मजलिस है, और मुजरिमों को आतंकवाद-विरोधी अदालत के सामने पेश किया जाना चाहिए। यह मामला,

उन्होंने कहा था, ताकत के नाजायज़ इस्तेमाल का है।

इसलिए पाकिस्तान की सरकार ने फ़ैसला किया है कि मुख़्तार बीबी का मामला एक सरकारी मामला बन गया है। हालाँकि यह सरकार का फ़र्ज है कि वह सभी मुजरिमों पर मुकदमा चलाये - उनके असर और हैसियत की परवाह किये बग़ैर, ऐसा मुझे बताया गया है। मस्तोई कबीले के आठ लोग 2 जुलाई आते-आते गिरफ़्तार किये भी जा चुके हैं, और पुलिस को हिदायत दी गयी है कि वह इस मामले में ख़ुद भी अपनी कारगुज़ारी की जवाबदेही करे। चार गुनहगार फ़रार हैं, लेकिन सरकारी शिकंजा उन पर कसा जा रहा है। पुलिस के सिपाही मेरी और मेरे घरवालों की हिफ़ाज़त के लिए मेरे घर पर तैनात कर दिये गये हैं। आख़िर में, पुलिस मस्तोई कबीले के चौदह लोगों को गिरफ़्तार कर लेती है। अदालत के पास शक के घेरे में आये लोगों की किस्मत का फ़ैसला करने के लिए बहत्तर घण्टे का वक्त रहा है।

❒

यह बड़ा अजीब-सा है। सारी दुनिया मेरा चेहरा जानती है और मेरे घर के हादसे के बारे में बातें कर रही है। हर चीज़ बड़ी तेज़ी से हो रही है। मैं इस सब को अपने अन्दर समो नहीं पा रही। वज़ीर बीबी ने मुझे बताया था कि उसने मुझे जो चेक दिया, उसे मेरा बाप जतोई शहर के बैंक में ले जा सकता था, जहाँ मैनेजर को पहले से ही हिदायत दे रखी गयी थी कि मेरे और मेरे बाप के नाम से एक खाता खोल दिया जाय। मैंने स्कूल खोलने और कानूनी ख़र्चों के लिए चेक ले लिया है, लेकिन मेरा कभी बैंक में कोई खाता नहीं रहा। और न मेरे बाप का। उस पैसे को हिफ़ाज़त से रखने की फ़िक्र में हम जतोई के बैंक में जाते हैं, जहाँ वो हम से सिर्फ़ दो जगह दस्तख़त कराते हैं और मेरे पिता को चेकबुक दे देते हैं।

जब हम उस शाम घर लौटते हैं तो हमें घर के गिर्द पुलिस के पन्द्रह हथियारबन्द सिपाही मिलते हैं। और सूबे के गर्वनर कम-से-कम पचास लोगों के साथ मुझे हौसला बँधाने और यह बताने के लिए आते हैं कि इन्साफ़ किया जायेगा। वो यह भी कहते हैं कि ज़ुल्म की शिकार सभी औरतें उनकी नज़र में उनकी बेटियों जैसी हैं, और यह कि अगर मैं इस चीज़ को आख़िर तक ले जाती हूँ तो मेरी हिफ़ाज़त की जायेगी।

आधे घण्टे बाद, वो अपने लाव-लश्कर के साथ रवाना हो जाते हैं। मुझे और मेरे बाप को ये महज़ खोखले अल्फ़ाज़ जान पड़ते हैं। वो सिर्फ़ फ़ोटो खिंचवाने और अख़बारवालों के लिए आये थे। मुझे अपनी लड़ाई ख़ुद लड़नी होगी।

बेचारे पुलिसवालों को बाहर पेड़ों के नीचे सोने पर मजबूर होना पड़ेगा। चूँकि इतने सारे लोग हैं, हमें भी उन्हें खाने-पीने के लिए कुछ देना ही होगा। जैसा कि होता है, वो

2,50,000 रुपये जो मेरे बाप और मैंने निकलवाये हैं, बहुत देर नहीं चलेंगे, क्योंकि पुलिसवालों का दस्ता साल भर तक हमारे घर पर तैनात रहेगा। और सरकार तो सिर्फ़ उनकी मामूली-सी तन्ख़ाहें ही देती है।

और चूँकि एक हादसे में हमेशा कोई-न-कोई मज़ाक का पहलू होता ही है, मैं अपने बहुत-से रिश्तेदारों के साथ, किसे आ पहुँचते देखती हूँ - अपने एक मामा को, जिसे मैंने एक लम्बे अर्से से नहीं देखा; किसी भी हालत में कम-से-कम सात साल पहले अपने तलाक के वक्त से। उसका एक बेटा है, मेरी ही उमर का, पहले से शादीशुदा और बाल-बच्चों वाला। वह पहले कभी शादी का पैग़ाम ले कर नहीं आया था। लेकिन अब मुझे गर्वनर के साथ और मेरे चेक को देख कर, वह मुहावरे की शक्ल में चट से एक पैग़ाम पेश कर देता है।

"टूटी हुई टहनी को बाहर नहीं फेंकना चाहिए : वो हमेशा घर के काम आ सकती है। अगर यह राज़ी हो तो मैं इसे अपने बेटे की दूसरी बीवी के तौर पर कबूल कर लूँगा।"

मैं उसका शुक्रिया अदा करती हूँ, बिना आगे कुछ कहे, लेकिन जवाब है - ना। वह अपने बेटे के लिए चाहता क्या था? मुझे या चेक को?

ज़ाती तौर पर मैं एक स्कूल चाहती हूँ।

ख़ामोशी का टूटना

पाकिस्तानी कानून के मुताबिक ज़िना-बिल-जब्र के जुर्म से जुड़े हर मर्द को कैद करना लाज़िमी है, चाहे उसने ख़ुद उसमें हिस्सेदारी की हो या फिर वह महज़ एक गवाह था। ऐसे आदमियों का फ़ैसला शरीअत के कानून के मुताबिक होता है। सरकार ने, बहरहाल, पाँच ज़िलों की सतह पर एक ख़ास अदालत मुकर्रर की है जहाँ इस जुर्म पर - बेहद ग़ैर-मामूली तौर पर - एक आतंकवाद-विरोधी अदालत में ग़ौर किया जाता है। यह चीज़ मेरे हक में जाती है : मुझे यह साबित करने के लिए चार चश्मदीद गवाह नहीं पेश करने होंगे कि मेरे साथ ज़बरदस्ती की गयी है, जो डॉक्टरी जाँच से पहले ही तय हो चुका है। इसके अलावा, गाँववालों के एक झुण्ड ने मेरा अस्तबल में जाना और वापस आना, नंगी हालत में सड़क पर सबके सामने फेंका जाना, देखा है।

मेरी हिफ़ाज़त का इन्तज़ाम हो गया है। सच तो यह है कि एक तरह से मैं अपनी ही सुरक्षा की कैदी बन गयी हूँ, क्योंकि जहाँ भी मैं जाती हूँ, मामूली-से-मामूली वजह से भी, पुलिस मेरे साथ जाती है।

अदालत ने पूरी फ़ाइल की जाँच करने के लिए कहा है। जल्दी से फ़ैसला करने पर लोगों की भावनाओं, मुल्क के मीडिया और विदेशी अख़बारों को शान्त किया जा सकेगा, जो हमारे लोकतन्त्र में औरतों के कानूनी हकों की कमी पर लगातार नुक्ता-चीनी कर रहे हैं, क्योंकि वो कबीलों के रवायती रस्मो-रिवाज पर टिके हैं। मानवाधिकार संगठन, औरतों पर होने वाले ज़ुल्मों का विरोध करने वाली जमातें और ग़ैर सरकारी संगठन, सब मेरे मामले को मिसाल बना कर अख़बारों के ज़रिये ऐसी कहानियों की तरफ़ ध्यान दिला रहे हैं, जो आम हालात में लोगों के सामने आने से रह जातीं। मेरा पूरा मुल्क मेरे साथ खड़ा है। लेकिन मुझे सिर्फ़ इन्साफ़ चाहिए। सीधा-सादा इन्साफ़। और कुछ नहीं। वही मेरा बदला होगा। वही मेरा प्रतिशोध होगा।

❒

लाहौर में एक औरत को, जो बीवी और माँ भी थी, और जिसने इस बिना पर तलाक की दरख़्वास्त दी थी कि उसका शौहर गाली-गलौज करता था, उसके वकील के दफ़्तर में कत्ल कर दिया गया और ख़ुद वकील को भी धमकी दी गयी। कातिल अब भी फ़रार है।

सक्कर के नज़दीक एक गाँव में तीन भाइयों ने यह दावा करते हुए अपनी भाभी को ज़िन्दा जला दिया कि वह बदचलन थी। औरत को उसके बाप ने बचाया, लेकिन बाद में वह हस्पताल में मर गयी।

❒

और यह फ़ेहरिस्त लम्बी होती चली जाती है। बहाना जो भी हो - तलाक, फ़र्ज़ी बदचलनी, या मर्दों का आपसी हिसाब-किताब - औरतों को भारी कीमत चुकानी पड़ती है। उन्हें किसी जुर्म के मुआवज़े में किसी के हवाले किया जा सकता है या उनके शौहरों के दुश्मन बदला चुकाने की एक सूरत के तौर पर उनकी इस्मत लूट सकते हैं। कभी-कभी इतना ही काफ़ी होता है कि दो मर्द किसी बात पर झगड़ बैठें, और उनमें से एक आदमी दूसरे की बीवी से बदला चुकाये। हमारे गाँवों में मर्दों का "आँख के बदले आँख" के उसूल की दुहाई देते हुए इन्साफ़ को अपने हाथ में लेने का आम चलन है। यह हमेशा इज़्ज़त का सवाल रहा है, और वो जो चाहें कर सकते हैं : किसी औरत की नाक काट सकते हैं, बहन को जला सकते हैं, किसी पड़ोसी की बीवी के साथ बलात्कार कर सकते हैं।

और अगर हमलावरों को, इससे पहले कि वो अपने शिकार का कत्ल कर दें, गिरफ़्तार कर भी लिया जाता है तो भी बदला लेने का जज़्बा यहीं ख़त्म नहीं होता, क्योंकि उनके कुनबे के दूसरे लोग किसी भाई या मामे-चाचे की इज़्ज़त के लिए मर-मिटने को हमेशा तैयार रहते हैं। मिसाल के लिए, मैं जानती हूँ कि अब्दुल ख़ालिक, जो दूसरों से और भी ज़्यादा बेलगाम और ग़ुस्सैल है, मुझे छोड़ने के ख़याल को कभी कबूल न करता। और कोई उसको मुझे सज़ा देने से रोक न पाया होता - बल्कि इसके उलट : हिंसा जितनी अधिक होती है, उतना ही उनको उसमें हिस्सा लेने का उकसावा मिलता है।

मैं "इज़्ज़त के नाम पर किये गये जुर्मों" की ताईद नहीं करती, कतई नहीं, लेकिन जब फ़िरंगी लोग मुझे सवाल पूछ-पूछ कर तंग करते हैं तो मैं उन्हें समझाने की कोशिश करती हूँ कि यहाँ पंजाब में, एक ऐसे सूबे में, जहाँ बदकिस्मती से ऐसे जुर्म बहुत आम हैं, समाज काम कैसे करता है। मैं इसी मुल्क में पैदा हुई थी, उसके कानून के अधीन हूँ, और मैं जानती हूँ कि मैं बाकी सभी दूसरी औरतों की तरह हूँ जो अपने घर के मर्दों की मिल्कियत होती हैं : हम चीज़ें हैं, और उन्हें इस बात का हक हासिल है कि जो भी वो हमारे साथ करना चाहें, करें। ताबेदारी लाज़िमी है।

❒

मेरे हमलावरों की सुनवाई आतंकवाद-विरोधी अदालत में, डेरा ग़ाज़ी ख़ाँ की एक ख़ास कचहरी में होगी, जो शहर कि सिन्धु नदी के पच्छिम में एक प्रशासनिक केन्द्र है और हमारे गाँव से कार के ज़रिये तीन घण्टे से ज़्यादा के फ़ासले पर है। पुलिस ने मस्तोइयों की हवेली में असलहा बरामद किया था, लेकिन उनके पास दूसरी जगह शायद और भी हथियार होंगे, क्योंकि पकड़े जाने से पहले उनके पास काफ़ी वक्त था कि वो जो कुछ जहाँ चाहें, छिपा सकें। मैं नहीं जानती कि इन असलहों की मौजूदगी अपने आप में इस बात के लिए काफ़ी है कि दहशतगर्दी के ख़िलाफ़ बनायी गयी अदालत का सहारा लेने की कार्रवाई को सही ठहराया जा सके, क्योंकि बहुत-से पंजाबी मर्द अपने पास हथियार रखते हैं। मुझे सिर्फ़ एक ही चीज़ का फ़ायदा है कि यह अदालत अपना फ़ैसला जल्दी से देगी, जबकि एक आम अदालत में मुकदमा महीनों या बरसों तक घिसटता रह सकता है।

अदालत में मेरा हर रोज़ हाज़िर रहना ज़रूरी है, और चूँकि मेरे लिए डेरा ग़ाज़ी ख़ाँ और मीरवाला के बीच आना-जाना मुश्किल है, मैं कचहरी के नज़दीक ही ठहराये जाने की माँग करती हूँ। मुझे शहर की आदत नहीं है - इस सारी धूल-मिट्टी, गाड़ियों, रिक्शों, ट्रकों और चीख़ती हुई मोटर साइकिलों से भरी शोर-शराबे वाली सड़कों की। मैं यहाँ अगले तीन हफ़्तों तक रहने वाली हूँ।

❒

अदालत मुकदमे की सुनवाई जुलाई के महीने में जुमे के रोज़, घटना के एक महीने बाद शुरू करती है - हमारे कानूनी निज़ाम में ग़ैर-मामूली तौर पर कम देर से। मुल्ज़िम हथकड़ियों में अदालत के सामने पेश किये जाते हैं : चौदह आदमी। रमज़ान पाचर उनमें शामिल है। नौ लोगों पर मेरे बाप को अपने हथियारों से धमकाने का इल्ज़ाम है; फ़ैज़ और बाकी चार ज़िना-बिल-जब्र के मुल्ज़िम हैं। अब तक, किसी मर्द, किसी अपराधी को भी, कभी कारोकारी के लिए सज़ा नहीं दी गयी है, इसलिए मुल्ज़िमों को भरोसा है कि वो आज़ाद लोगों की हैसियत से अदालत के बाहर आयेंगे। फ़ैज़ और बाकी दूसरे ख़ामोश हैं, अपनी तरफ़ से बोलने का काम उन्होंने अपने वकीलों पर छोड़ दिया है। मुझे अपनी हमलावरों की हेकड़ी आम दिनों से कम महसूस होती है, और मुझे उनका सामना करने में कोई डर नहीं लगता। कल के भेड़िए मेमनों जैसे लगते हैं। लेकिन बाहर से नज़र आने वाली सूरतें धोखा दे सकती हैं। मैं जानती हूँ, उन्होंने मेरे साथ क्या कुछ किया था। उन्होंने अपने गुनाहों की डींगें हाँकना बन्द कर दिया है, और अब उन्हें अपनी "ख़ानदानी इज़्ज़त" की कीमत बताते हुए, उनकी शेख़ी नहीं बघारते।

यहाँ आने से पहले मैंने नमाज़ पढ़ी थी, जैसा कि मैं हमेशा करती हूँ, सूरज उगने के साथ। मुझे ख़ुदा के इन्साफ़ में यकीन है, आदमियों के इन्साफ़ की बनिस्बत शायद ज़्यादा ही। और मैं तकदीर पर भरोसा करती हूँ।

एक नीची ज़ात की अकेली औरत के ख़िलाफ़ मस्तोई कबीले के चौदह आदमी... किसी ने ऐसा पहले कभी नहीं देखा। ख़ैर, दूसरी तरफ़ के लोगों के पास वकीलों की पूरी भीड़ है, कुल जमा नौ। मेरे पास तीन हैं, जिनमें से एक की उम्र काफ़ी कम है और उसके अलावा एक औरत भी है। आरोपियों की तरफ़ से मेरा सबसे बड़ा विरोधी तकरीर करने में माहिर है; वह सुनवाई पर काबिज़ रहता है और मुझे बार-बार यह कहते हुए झूठा करार देता रहता है कि मैंने सारी चीज़ें अपने मन से गढ़ ली हैं।

आख़िरकार, मैं एक तलाकशुदा औरत हूँ, जो मेरे विरोधियों के मुताबिक मुझे इज़्ज़तदार औरतों के सबसे निचले दर्जे में रख देता है। मैं यह भी सोचती हूँ कि कहीं इसीलिए तो मस्तोइयों ने मुख़्तारन बीबी को नहीं चुना था। मुझे कभी पता नहीं चलेगा।

मस्तोई दावा करते हैं कि उन्होंने औरतों की अदला-बदली करने की पेशकश की थी : शकूर के लिए सलमा और अपने कबीले के एक मर्द के लिए मुख़्तार। वो ज़ोर देते हैं कि मेरे बाप, मेरे चाचा और बीच-बचाव करने वाले रमज़ान ने इसे मंज़ूर करने से इनकार कर दिया था। इसके विपरीत, लगता है कि रमज़ान ही वह आदमी था जिसने राय दी थी कि मैं मस्तोइयों को उस ज़िना के लिए सौंप दी जाऊँ जो दोनों घरों के बीच हालात को बराबर कर देगा; इस पेशकश को मेरे बाप ने नामंज़ूर कर दिया था। इस मामले में रमज़ान ने जिस गँदलेपन से काम किया है, उसकी वजह से वह मुझे और भी ज़्यादा सन्दिग्ध महसूस होने लगा है। बहरहाल, दूसरे पक्ष का दावा है कि मैंने शुरू से आख़िर तक झूठ बोला है। कुछ नहीं हुआ था! किसी ने मेरे बाप ग़ुलाम फ़रीद गूजर की बड़ी बेटी से ज़िना-बिल-जब्र नहीं किया था।

बचाव पक्ष की कोशिश है कि यह मैं साबित करूँ कि एक जुर्म किया गया था, जो मेरे लिए करना लाज़िमी है। कानून के मुताबिक इसे साबित करने के दो तरीके हैं : या तो कानूनी अधिकार वाली अदालत के सामने गुनहगार आदमी या आदमियों के पूरे इकबाले-जुर्म के ज़रिये (जो कभी नहीं होता), या फिर ऐसे चार बालिग़ मुसलमान आदमियों की गवाही की बिना पर जो अपने धरम-करम के लिए जाने जाते हों और जिन्हें अदालत इज़्ज़तदार मानती हो। लेकिन इन बुनियादी शर्तों के न होते हुए भी, पाकिस्तान में किसी अदालत के सामने ऐसी कोई रुकावट नहीं है कि वह तस्दीक करने वाले दूसरे सबूत पर निर्भर न कर सके, ख़ास तौर से डॉक्टरी सबूत पर।

फिर भी इस ग़ैर-मामूली अदालत में मेरी मौजूदगी का यही मतलब हो सकता है कि किस्मत ने मुझे इन्साफ़ का रास्ता दिखाने का फ़ैसला किया है। और अगर फ़ैसला

मुनासिब हुआ तो वही मेरा बदला होगा। बेड़ियों में जकड़े इन दुबके हुए लोगों के सामने खड़े हो कर ठण्डेपन से और फ़ालतू ब्योरों में जाये बिना, बयान देने में अब मुझे कोई डर नहीं है। जाँच करने वाले मजिस्ट्रेट को जो बयान मैंने दिया था, वह पहले ही सबूत के तौर पर दर्ज कर लिया गया है।

मुझे अपना बयान दर्ज कराये अब कुछ अर्सा गुज़र चुका है, लेकिन मुझे याद है कि मैंने मुकदमे की सुनवाई करने वाले जज को तफ़सील से बताया था कि मैं कैसे जिर्गे के सामने पेश हुई थी। मैंने एक आदमी को यह कहते सुना था, "इसे माफ़ कर देना चाहिए," लेकिन एक और आदमी फ़ौरन आगे आया और उसने ज़िना पर ज़ोर दिया था। किसी ने यह ज़ाहिर तक नहीं किया था कि वह मुझे बचाना चाहता है, सिवा मेरे बाप, चाचा, हाजी अल्ताफ़, और ग़ुलाम नबी के, लेकिन उन्हें भी ताकत और तादाद में ज़्यादा, और हथियारों से लैस, मस्तोइयों ने बन्धक बनाये रखा था। वहाँ चार हमलावर थे जिन्होंने एक के बाद एक मेरे साथ ज़बरदस्ती की और मुझे शर्मिन्दगी की हालत में, मेरे बाप की आँखों के सामने, अस्तबल से बाहर फेंक दिया था।

जब मैं बोलना ख़त्म करती हूँ, मैं बाहर से शान्त नज़र आती हूँ, लेकिन शर्म से मेरा दिल और मेरा पेट दर्द कर रहा है।

सुनवाई बन्द दरवाज़ों के पीछे की जा रही है। अख़बार वाले बाहर इन्तज़ार कर रहे हैं। सिर्फ़ शिकायत करनेवाली के तौर पर मैं, मुजरिम, गवाह और वकील, जज के सामने हाज़िर हैं, जो समय-समय पर दख़ल देता है, जब कार्रवाई वकीलों की आपसी बहस की वजह से दलदल में जा फँसती है।

❐

आख़िरी सुनवाई के वक्त जज अगले दिन अपना फ़ैसला सुनाने की तैयारी कर रहा है। जैसा कि होता है, मैं वहाँ मौजूद नहीं हूँ जब वह ज़िलेदार के साथ-साथ नायब ज़िलेदार (वही जिसने सादे काग़ज़ पर मेरे बयान पर मुझ से अँगूठा लगवाया था) और उसके आदमियों से सवाल-जवाब करता है। मुझे बाद में पता चलता है कि नायब ज़िलेदार और उसके आदमियों के मुताबिक मेरा उस वक्त का बयान मेरे आज के बयान से अलग है।

"मैंने तुम सबको इसलिए तलब किया," जज बताता है, "क्योंकि तुम सब वहाँ थे जब मुख़्तार ने अपनी कहानी बयान की, और जो कुछ इन काग़ज़ात पर लिखा है, उसके लिए तुम सब ज़िम्मेदार हो।"

"हुज़ूर," ज़िलेदार जवाब देता है, "मुझे यह साफ़ करने की इजाज़त दीजिए कि वो दूसरे थे जिन्होंने ये खिचड़ी पकायी थी। मुख़्तार ने मुझे इस बारे में बताया था जब उसने इस मामले में पहले मुझसे मेरे दफ़्तर में बात की थी, और जब मैंने उस पुलिसवाले

को बुलाया, उसने कहा, 'कोई दिक्कत नहीं है, वो काग़ज़ फ़ाइल में होगा, मैं उसे देख लूँगा,' लेकिन उसने वो फ़ाइल मुझे कभी ला कर नहीं दी!"

"यह सब सुन कर," जज ग़ुस्से में कहता है, "मेरा जी चाहता है, तुम्हें जेल भेज दूँ।"

ख़ैर, जज बहरहाल उसे जाने देता है, और ऐलान करता है कि मामले का निपटारा करने में देर लगेगी।

❐

31 अगस्त, 2002 को अदालत का वक्त ख़त्म हो जाने के बाद, एक ख़ास पेशी के दौरान अदालत अपना फ़ैसला सुनाती है। छै आदमियों को मौत की सज़ा और जुरमाने के तौर पर 50,000 रुपये अदा करने का हुक्म दिया गया है : चार को मुख़्तारन बीबी के साथ बलात्कार के इल्ज़ाम में, और दो - यानी कबीले के सरदार फ़ैज़ और रमज़ान - को जिर्गा के सदस्यों की हैसियत से बलात्कार को शह देने के लिए। यह रमज़ान मेरे घरवालों की तरफ़ से बीच-बचाव करने का बहाना कर रहा था, जबकि असलियत में वह एक मक्कार ग़द्दार था, जो मेरे बाप के भरोसे का फ़ायदा उठा रहा था, और भरसक कोशिश कर रहा था कि मस्तोई जो चाहते थे वह उन्हें मिल जाय।

बाकी आठ आदमी रिहा कर दिये जाते हैं।

मैं अदालत के बाहर इन्तज़ार कर रहे पत्रकारों को बताती हूँ, कि मुझे फ़ैसले से सुकून और तसल्ली है, लेकिन मेरे वकील आठ मस्तोई मर्दों को रिहा करने के फ़ैसले के ख़िलाफ़ अपील करेंगे। मुझे यह भी उम्मीद है कि सरकारी वकील भी एक अपील दायर करेंगे। अपने तईं, वो छै मुज़रिम भी अपनी मौत की सज़ाओं के सिलसिले में अपील दायर करेंगे। सो, भले ही मैं जीत गयी हूँ, मामला अभी ख़त्म नहीं हुआ है। बहरहाल, महिला अधिकारों के कार्यकर्ता बेहद ख़ुश हैं - मुख़्तारन बीबी का यह कामयाब संघर्ष उनके लिए एक महत्वपूर्ण प्रतीक बन गया है।

मैं अपना सिर ऊँचा किये, और उस पर विनम्रता से रिवाज के मुताबिक चद्दर ओढ़े, अपने गाँव लौट सकती हूँ।

❐

अभी मुझे एक स्कूल भी बनाना है, और वह आसान नहीं है। पता नहीं क्यों, पर कभी-कभी मेरी ताकत मेरा साथ छोड़ देती है... मेरा वज़न गिर रहा है और मेरा चेहरा थकान से मुर्झा गया है। वह तकलीफ़देह वाकया जिसने मेरी सुकून-भरी ज़िन्दगी को तबाह कर दिया और यह शानदार जीत जिसकी वाहवाही अख़बारों और टेलिविज़न ने की है, दोनों ही ने मुझे बेहद उदास कर दिया है - मैं बोलते-बोलते, मर्दों और उनके क़ानूनों

से वास्ता रखते-रखते, थक गयी हूँ। लोग कहते हैं कि मैं बहादुर हूँ, जबकि मैं बेतरह पस्त हो चुकी हूँ। मैं हँसती-बोलती और मस्त रहती थी, लेकिन वह मौज और ज़िन्दादिली मैं खो चुकी हूँ। कभी मुझे अपनी बहनों से हँसी-मज़ाक करना पसन्द था, और मुझे अपने काम में मज़ा आता था, अपनी कढ़ाई में, बच्चों को कुरान सिखाने में; अब मैं उदास और बुझी-बुझी हूँ। अपने दरवाज़े के सामने पुलिसवालों के इस घेरे में, एक तरह से, मैं ख़ुद अपनी कहानी की कैदी बन गयी हूँ, भले ही मैंने अपने ज़ालिमों पर फ़तह हासिल की है।

वकील और संगठनों के कार्यकर्ता मुझे तसल्ली देते हैं : अपील में बहुत वक्त लगेगा, एक साल या दो भी, और इस बीच मैं सुरक्षित हूँ। जो आदमी छोड़े गये थे, वो भी मेरी तरफ़ टेढ़ी नज़र से देखने की हिम्मत नहीं कर सकते। और यह सच है। लोग कहते हैं, अपनी हिम्मत की बदौलत मैंने अपने मुल्क में औरतों की हालत को उजागर कर दिया है, और दूसरी औरतें मेरी दिखाई गयी राह पर चलेंगी। कितनी औरतें - मैं हैरत से सोचती हूँ?

कितनी औरतों को उनके घरवाले सहारा देंगे, जैसे मेरे घरवालों ने मुझे दिया था? कितनी औरतें इतनी ख़ुशकिस्मत होंगी कि एक अख़बारवाला सच्चाई की ख़बर छापे, कि इन्सानी हकों के लिए लड़ने वाले संगठन उनके मामलों को इतने ज़ोर-शोर से उठायें कि ख़ुद सरकार को दख़ल देना पड़े ताकि कानून और इन्साफ़ का अमल पक्के तौर पर हो सके? सिन्धु नदी की घाटी के गाँवों में इतनी ढेर सारी बे-पढ़ी-लिखी औरतें हैं, इतनी सारी औरतें जिनके पति और घरवाले उन्हें ठुकरा देंगे, उन्हें हिफ़ाजत के बिना छोड़ते हुए, इज़्ज़त और सहारे के हर साधन से वंचित। मामला बस इतना ही सीधा-सादा है।

गाँव में लड़कियों का एक स्कूल कायम करने की मेरी हसरत मेरे दिल की सबसे प्यारी तमन्ना है; इसका ख़याल मुझे लगभग ख़ुदा से मिले पैग़ाम की तरह सूझा। मैं लड़कियों को तालीम देने, उन्हें सीखने की हिम्मत देने के लिए एक रास्ता खोजने की कोशिश कर रही थी। चूँकि लड़की को घर के काम-काज में हाथ बटाना होता है, बाप उसे पढ़ने के लिए भेजने की सोचता ही नहीं। हालात ऐसे ही हैं। और मेरे दूर-दराज़ के गाँव में एक लड़की अपनी माँ से क्या सीखती है? चपातियाँ बनाना, दाल-चावल पकाना, कपड़े धोना और उन्हें खजूर के तनों पर सूखने के लिए फैलाना, जानवरों के लिए घास छीलना, गेहूँ और गन्ने की फ़सल काटना, चाय बनाना, छोटे बच्चों को सुलाना, हैण्डपम्प से पानी लाना। हमारी माँओं ने ये सारी चीज़ें हमसे पहले की हैं, और उनसे पहले उनकी माँओं ने भी यही किया था। और फिर शादी करने और बच्चे पैदा करने का वक्त आ जाता है... इसी तरह ज़िन्दगी गुज़रती जाती है - एक औरत से दूसरी औरत तक।

लेकिन शहरों में, और दूसरे सूबों में भी, औरतें पढ़-लिख सकती हैं और वकील, मास्टरनियाँ, डॉक्टर, पत्रकार बन सकती हैं। मैं उनमें से कुछ से मिली हूँ और वो मुझे

बेहया या बदनाम नहीं लगतीं। वो अपने माँ-बाप और शौहरों की इज़्ज़त करती हैं, लेकिन उन्हें अपनी तरफ़ से बोलने का हक है, क्योंकि उनके पास इल्म है। मेरे पास इसका आसान-सा जवाब है : लड़कियों को तालीम दी जानी चाहिए, और जल्द-से-जल्द, इससे पहले कि उनकी माँएँ उन्हें उसी तरह पाल-पोस कर बड़ा कर दें जैसे वो ख़ुद पाली-पोसी गयी थीं।

मैं उस पुलिसवाले के शब्द कभी नहीं भूलूँगी जिसने मुझे टोका था जब मैं ज़िलेदार को अपना बयान देने को तैयार थी।

"मुझे समझाने दीजिए! इसे पता नहीं कि चीज़ें कैसे कही जाती हैं..."

लेकिन मैं बोल पड़ी थी। इसलिए कि मेरे अन्दर बहुत दम है? इसलिए कि मेरी बेइज़्ज़ती हुई थी? इसलिए कि अचानक मेरी ज़बान बोलने के लिए आज़ाद हो गयी थी? हाँ, इन सारी वजहों से। लेकिन मैं इसका पक्का इन्तज़ाम करूँगी कि लड़कियाँ पढ़ना-लिखना सीखें, और मैं ख़ुद भी सीखूँगी। अब कभी मैं एक सादे काग़ज़ पर अपना अँगूठा नहीं लगाऊँगी।

मैंने अपनी एक बहन की याद में एक छोटा-सा हस्पताल बनाने की सोची थी, जो कैंसर से मर गयी थी, क्योंकि उसका ठीक ढंग से इलाज नहीं हुआ था। हालाँकि ऐसे काम का ज़िम्मा लेने पर स्कूल से ज़्यादा ख़र्च होगा : डॉक्टर और नर्स रखना, मुफ़्त इलाज करने के लिए दवाइयाँ हासिल करना - एक नामुमकिन सिरदर्द। जब मैंने ख़ुद को उस महिला मन्त्री के पास पाया तो मैंने बेसाख़्ता "स्कूल" कहा, हालाँकि अँगूठे के निशान वाली घटना से पहले कभी यह ख़याल मेरे दिमाग़ में नहीं आया था। क्योंकि उन हालात में मुझे ऐसा लगा था कि मुझे हथकड़ी लगी हुई है, जो हो रहा था उसके सामने मैं बेबस थी। अगर मुझे पता होता कि पुलिसवाला क्या लिख रहा है तो चीज़ें दूसरी तरह हुई होतीं। वह मेरे साथ किसी और तरीके से चालबाज़ी करने की कोशिश करता, लेकिन इतने खुल्लम-खुल्ला ढंग से नहीं।

किसी-किसी इलाके में गाँवों के पुलिसवाले और बड़े अफ़सर कबीले के निज़ाम में सिर्फ़ मोहरे होते हैं, अमीर ज़मींदारों के इशारों पर नाचने वाले, क्योंकि आख़िरकार अमीर ही तो हैं जो हुकूमत करते हैं। अगर मैं उस निज़ाम से बच निकली हूँ तो अपने घरवालों, अख़बारनवीसों, एक साफ़-साफ़ सोचने वाले जज, और सरकार की दख़लन्दाज़ी की बदौलत। मेरा एक ही बहादुरी का कारनामा था - बोल पड़ना। इसके बावजूद कि मुझे ख़ामोश रहना सिखाया गया था।

यहाँ एक औरत के पास खड़े होने के लिए कोई पक्की ज़मीन नहीं है। जब वह अपने माँ-बाप के साथ रहती है, तब वह वही करती है जो वो चाहते हैं। एक बार उसने अपने पति के घर में कदम रखा तो वह उसके हुक्म पर चलती है। जब उसके बच्चे बड़े

हो जाते हैं तब उसके बेटे उसकी लगाम पकड़ लेते हैं, और वह उसी तरह उनकी मिल्कियत हो जाती है। मेरी ख़ूबी उस गुलामी को तोड़ कर उससे छुटकारा पाना है। अपने शौहर से आज़ाद, बाल-बच्चों के बिना, मैं अब दूसरे लोगों के बच्चों की देख-भाल करने का सम्मान हासिल करने की कोशिश कर सकती हूँ।

❐

सरकारी इमदाद से, मेरे पहले स्कूल का दरवाज़ा 2002 के आख़िर में खुल जाता है। हुकूमत ने खुले दिल से काम किया है, सड़क चौड़ी कर दी है, नालियाँ सुधार दी हैं, बिजली लायी गयी है, और मैंने एक टेलिफ़ोन भी लगवा लिया है। 5,00,000 रुपयों में से जो पैसे बचे हैं, उनसे मैं अपने घर के नज़दीक, स्कूल के लिए, तकरीबन चार-चार एकड़ के दो ज़मीन के टुकड़े ख़रीद लेती हूँ। मैं अपने गहने बेच कर उसका पैसा भी लड़कियों के स्कूल में लगा देती हूँ, जहाँ शुरू-शुरू में पढ़ने वाले बच्चे पेड़ों की छाँह में ज़मीन पर बैठते हैं।

और जब तक हम एक मुनासिब इमारत नहीं बना लेते, यही है मेरा "पेड़ों के नीचे लगने वाला स्कूल।" नन्ही बच्चियाँ मुझे मुख़्तार माई कह कर बुलाने लगती हैं। हर सुबह मैं उन्हें कापियाँ और पेंसिलें लिये आते देखती हूँ और टीचर हाज़िरी लेती है। यह कामयाबी, हालाँकि अब भी अधूरी है, पर मुझे कितनी ख़ुशी से भर देती है। किसने कभी यह कहा होता कि मुख़्तारन बीबी, खेती-बाड़ी करने वालों की बे-पढ़ी-लिखी बेटी, एक दिन किसी स्कूल की प्रिन्सिपल बनेगी?

सरकार लड़कों के सेक्शन में एक टीचर की तनख़ा देती है, और बाद में दूसरी जगहों से भी चन्दा आता है, मिसाल के लिए, फ़िनलैण्ड से 15,000 रुपये ताकि तीन साल तक एक टीचर की तनख़ा का बन्दोबस्त किया जा सके।

सन 2002 ख़त्म होते-न होते मैं पाती हूँ कि एक ओर तो मेरी इज़्ज़त रौंद दी गयी है, लेकिन दूसरी ओर स्कूल में मेरी मेज़ पर फ़्रेम में मढ़ी एक इनामी सनद रखी हुई है।

अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार दिवस
श्रीमती मुख़्तारन माई के सम्मान में
महिला अधिकारों का पहला राष्ट्रीय पर्व
10 दिसम्बर, 2002
अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार समिति

दुनिया में सचमुच मेरा वजूद है, और सभी पाकिस्तानी औरतों के नाम पर।

दो साल बाद, 2005 में, स्कूल धड़ल्ले से चल रहा है। साल भर के लिए टीचरों

की तन्ख़ाहें दी जा चुकी हैं, और मैं एक अस्तबल बनाने की सोच रही हूँ, ताकि मैं स्कूल को उसकी कुछ अपनी आमदनी मुहैया कराने के लिए गाय-बैल और बकरियाँ ख़रीद सकूँ।

हालाँकि बाज़ वक्त मेरी ज़िम्मेदारियाँ मुझे बहुत भारी लगती हैं, लेकिन जब औरतों का एक संगठन, वुमेन्स क्लब 25, मुझे औरतों के एक अन्तर्राष्ट्रीय जलसे में हिस्सा लेने के लिए स्पेन आने का न्योता देता है, जिसकी अध्यक्षता जुर्दान की मल्का रानिया कर रही हैं, तब मुझे थोड़ा-सा ख़ुशनुमा हिम्मत बँधाने वाला सहारा मिलता है। मैं अपने बड़े भाई के साथ पहली बार हवाई जहाज़ में बैठती हूँ। हम दोनों घबराये हुए हैं, क्योंकि हमारे इर्द-गिर्द के लोग इतनी सारी विदेशी भाषाएँ बोल रहे हैं। ख़ुशकिस्मती से, दुबई में जब हमारा जहाज़ रुकता है तो हमारा स्वागत बड़ी गर्मजोशी से होता है, और बाकी सफ़र के दौरान हमें हिफ़ाज़त के साथ ले जाया जाता है।

औरतों के ख़िलाफ़ ज़ुल्म पर आयोजित उस जलसे में बहुत-सी औरतें मौजूद हैं, और वो इतने सारे मुल्कों से आयी हैं, उनके पास कहने को इतना कुछ है कि मैं यह महसूस करके भौंचक्की रह जाती हूँ कि यह मसला इतना बड़ा है। हर उस औरत के मुकाबले, जो ज़ुल्म के ख़िलाफ़ लड़ती और बच निकलती है, कितनी औरतें रेत में दफ़्न हो जाती हैं, बिना किसी कद्र या कीमत के, यहाँ तक कि कब्र के बिना भी? तकलीफ़ के इस समन्दर में मेरा स्कूल कितना छोटा लगता है, एक छोटे-से पत्थर की तरह जो दुनिया में कहीं रखा हुआ है - इस कोशिश में कि मुट्ठी भर नन्ही लड़कियों को पढ़ना-लिखना, और कुछ छोटे लड़कों को अपने साथियों, बहनों, पड़ोसियों की इज़्ज़त करना सिखा कर, पीढ़ी-दर-पीढ़ी इस शिक्षा को अपना काम करने की मुहलत देते हुए, मनुष्य के स्वभाव को बदला जा सके। कितनी छोटी-सी कोशिश...

लेकिन यहाँ मैं यूरोप में हूँ, वो सरज़मीन जो मेरे गाँव के पच्छिम में कहीं है, वो जगह जिसके बारे में मेरे मामू ने बताया था जब मैं बच्ची थी, और ये फ़िरंगी मेरी कहानी जानते हैं! मैं एक अचम्भे से दूसरे अचम्भे की तरफ़ जाती हूँ, कुछ-कुछ सहमी हुई-सी, यह ज़ाहिर करने की हिम्मत न करती हुई कि महज़ वहाँ होने पर मुझे कितना गर्व है - इस लम्बी-चौड़ी दुनिया में दूसरी औरतों के बीच एक औरत।

फिर घर लौट कर, मुझमें स्कूल को बढ़ाने की अपनी योजना को ले कर और ज़्यादा हिम्मत महसूस होती है। जब भी मैं किसी बच्चे को मीरवाला के खजूर के पेड़ों के नीचे बैठ कर कुरान की आयतें पढ़ते या पहाड़े और अंग्रेज़ी की ए-बी-सी-डी दोहराते सुनती हूँ, तो मुझे लगता है कि मेरी ज़िन्दगी का सचमुच कोई मतलब है। जल्दी ही इतिहास और भूगोल के सबक भी शुरू हो जायेंगे। मेरी नन्ही बच्चियाँ, मेरी बेटियाँ, वही चीज़ें सीखने लगेंगी जो लड़के सीखते हैं।

❑

यह ज़िन्दगी तो, बहरहाल, मेरे बाहर की है। मेरे पास ऐसा कोई नहीं जिस पर मैं भरोसा कर सकूँ, जिसके सामने दिल खोल सकूँ। मैं शक्की मिज़ाज हो गयी हूँ, अपनी पुरानी ज़िन्दगी - वो सुकून, वो हँसी, वो रात और दिन से हो कर बहता हुआ चैन का सफ़र - फिर से हासिल करने के काबिल नहीं रही।

बेशक, बिजली अब हमारे घर की दहलीज़ को रोशन रखती है, और टेलिफ़ोन की भी घण्टी बजती है - सच पूछो तो अक्सर ही, चूँकि मुझे एन.जी.ओ और अख़बारवालों के टेलिफ़ोन बराबर आते रहते हैं। मैं इन टेलिफ़ोनों का जवाब ईमानदारी से देती हूँ, क्योंकि मुझे अपने स्कूल के सिलसिले में हमेशा मदद की ज़रूरत रहती है, जहाँ हमारे सिरों के ऊपर अब भी छत नहीं है। उसके लिए अभी तक हमारे पास काफ़ी पैसे नहीं हैं, और यह 2003 है - जून की उस ख़ौफ़नाक रात के एक साल बाद।

एक दिन मुझे फ़ोन पर एक औरत की आवाज़ सुनायी देती है।

"हैलो? अस्सलाम वालेकुम मुख़्तार, मैं नसीम हूँ, पड़ोस के गाँव पीरवाला से। मेरे अब्बा पुलिस के सिपाही हैं और तुम्हारे घर के बाहर तैनात हैं। मैं उन का हाल-चाल जानना चाहती हूँ..."

पीरवाला हमारे यहाँ से बारह मील दूर है। नसीम के पिता मेरी हिफ़ाज़त करने वाले दस्ते में शामिल हैं, और उसके चाचा कोई तीन मील दूर एक नहर पर काम करते हैं। वो मुझे बताती है कि हमारा दूर का रिश्ता भी है, क्योंकि हम दोनों की मौसियाँ एक ही ख़ानदान की हैं और दोनों पीरवाला में रहती हैं। नसीम अलीपुर में अपनी पढ़ाई पूरी करके घर आ गयी है। अलीपुर वही शहर है जहाँ मैं उस जज से मिली थी, जो इतना रहमदिल और समझदार लगा था। अब नसीम मुलतान में कानून के कॉलेज में दाख़िल हो गयी है।

मैं नसीम से कभी नहीं मिली, और वह मेरे बारे में सिर्फ़ उतना ही जानती है, जो उसने अख़बारों में पढ़ा है। मैं उसके बाप को बुलवा भेजती हूँ, ताकि वह उससे बात कर सके, और इस बीच हम थोड़ी-सी गप-शप करते हैं। बाद में, वह फिर फ़ोन करती है, हज करने के लिए मेरे मक्का चले जाने के बाद, जो हर नेक मुसलमान का दिली सपना होता है। जब वह तीसरी बार फ़ोन करके मुझे न्योता देती है कि मैं जा कर उससे मिल आऊँ तो मैं इसकी बजाय उसे अपने पास आने के लिए कहती हूँ, क्योंकि इन दिनों पहले ही से इतने सारे लोग मुझसे मिलने के लिए आते रहते हैं। मुझे ज़रा भी अन्दाज़ा नहीं है कि मुझे नसीम से दोस्ती ही नहीं मिलेगी, बल्कि बेशकीमती मदद और सहारा भी मिलेगा। उसने मेरे बारे में सब कुछ पढ़ रखा है और मेरी कहानी में उसको कानूनी नज़रिये से भी दिलचस्पी है। लेकिन अगर उसका बाप मेरी हिफ़ाज़त के लिए तैनात किये

पुलिसवालों में न होता, तो हम कभी मिले ही न होते। नसीम ऐसी नहीं है कि ख़ुद को मुझ पर थोपे, जैसे कुछ दूसरे लोग जो मेरी "बदनामी" से खिंच कर आते रहे हैं।

जब मैं नसीम से पहली बार मिलती हूँ तो मुझे वह एक हैरतंगेज़ औरत लगती है। वह मुझसे बिलकुल उलट है - फुर्तीली, चुलबुली, साफ़ दिमाग़ वाली, बोलने में होशियार, लोगों से - या जो वह सोचती है उसे बोलने से - न डरने वाली। उसकी कही हुई पहली-पहली बातों में एक का मुझ पर बड़ा असर पड़ता है।

"तुम हर आदमी से और हर चीज़ से डरती हो... अगर तुम्हारा यही हाल रहा तो तुम कभी कामयाब नहीं हो पाओगी। तुम्हें चीज़ों को अपने हाथ में लेना होगा।"

उसे बहुत जल्दी पता लग गया है कि एक करामात ने ही मुझे थाम रखा है। सच्चाई यह है कि मैं बुरी तरह थक गयी हूँ। मुझे कुछ चीज़ें समझने में बहुत वक्त लग गया है, जैसे, लोग मेरे बारे में क्या कह रहे हैं, और क्या होगा इस दौरान जब अदालत मस्तोइयों की अपील पर ग़ौर कर रही है। मुझे अब भी उनके कबीले की ताकत का ख़ौफ़ है। हालाँकि मुझे पुलिस की हिफ़ाज़त मिली हुई है... अभी कुछ भी निश्चित नहीं है, क्योंकि वो आठ मस्तोई मर्द आज़ाद हैं, और अब भी मुझे नुकसान पहुँचा सकते हैं। कभी-कभी रात के वक्त, मैं अँधेरे में झाँकती हूँ। कोई कुत्ता भौंकता है, और मैं उछल पड़ती हूँ। अचानक मुझे एक आदमी का साया नज़र आता है - शायद कोई दुश्मन है, मिसाल के लिए कोई ऐसा जिसने पुलिसवालों में से किसी एक के साथ जगह बदल ली है। हर बार जब मैं घर से बाहर निकलती हूँ, मेरे इर्द-गिर्द हथियारबन्द लोग होते हैं। मैं जल्दी से टैक्सी में बैठती हूँ, जिससे मैं तभी बाहर निकलूँगी जब मैं मीरवाला से दूर आ जाऊँगी। ख़ुशकिस्मती से मुझे गाँव से हो कर नहीं जाना पड़ता, क्योंकि हमारा घर और खेत बस्ती में दाख़िल होते वक्त बस शुरू ही में हैं - मस्जिद को जाने वाले रास्ते के सामने का पहला घर। लेकिन इस गाँव में ज़्यादातर घर मस्तोइयों के हैं। और स्थानीय अख़बार लगातार मेरी बुराई करते रहते हैं। मैं एक "पैसे खसोटने वाली औरत हूँ।" मेरा बैंक में खाता है! मैं एक तलाकशुदा औरत हूँ जिसके लिए अपने शौहर के पास लौट जाना ही बेहतर होता। ख़ुद मेरा पूर्व पति मेरे बारे में झूठ फैला रहा है, यह दावा करते हुए कि मैं चरस पीती हूँ।

नसीम कहती है कि मैं शक से पागल होती जा रही हूँ। दुबली-पतली, फ़िक्र की मारी, मैं ऐसे किसी इन्सान से बात करने की ज़रूरत महसूस करती हूँ, जिस पर मैं भरोसा कर सकूँ। ऐसा नसीम के साथ होता है। आख़िरकार मैं उस ज़बरदस्ती, उस वहशीपन, के बारे में सचमुच बात कर पाती हूँ, उस बेहूदा बदले के बारे में जो एक औरत के जिस्म को तबाह कर देता है। नसीम को मालूम है कि जब भी मुझे बात करने की ज़रूरत महसूस हो तो वह कैसे मेरी बातें सुने, चाहे जितना वक्त लगे। विकसित देशों में ऐसे

डॉक्टर होते हैं जिन्हें ख़ास तौर पर सिखाया गया होता है कि एक चूर-चूर कर दी गयी, मिट्टी की तरह रौंद दी गयी औरत की मदद कैसे करें ताकि वह फिर से ख़ुद को दुरुस्त कर सके।

"तुम एक बच्चे की तरह हो," वह मुझसे कहती है। "एक बच्चा जो चलना सीख रहा हो। यह एक नयी ज़िन्दगी है : तुम्हें सिफ़र से शुरू करना होगा। मैं कोई डॉक्टर नहीं हूँ, लेकिन मुझे अपनी पहले की ज़िन्दगी के बारे बताओ, अपने बचपन, अपनी शादी और इस बारे में भी जो उन्होंने तुम्हारे साथ किया। तुम्हें बात करनी होगी, मुख़्तार, और यह बात करने से होता है कि हम अच्छे और बुरे को खुले में ले आते हैं। हम ख़ुद को आज़ाद कर लेते हैं। यह मैले कपड़े धोने की तरह है : एक बार वो फिर से साफ़ हो गये तो तुम उन्हें दोबारा अपने जिस्म पर भरोसे के साथ पहन सकती हो।"

नसीम अपने घर में सबसे बड़ी है, और उसने अब फ़ैसला किया है कि कानून की पढ़ाई छोड़ कर वह एक निजी छात्र की तरह पत्रकारिता में एम.ए. की डिग्री के लिए तैयारी करेगी। उसके चार भाई-बहन भी स्कूल में हैं। मेरे भी चार भाई-बहन हैं। और इसके बावजूद, हम दोनों की ज़िन्दगियाँ बिलकुल अलहदा-अलहदा हैं, हालाँकि हमारे गाँव एक-दूसरे से बारह मील से थोड़े ज़्यादा के फ़ासले पर हैं। वह अपनी आगे की ज़िन्दगी के बारे में ख़ुद तय कर सकी है। नसीम एक सरगर्म कार्यकर्ता है, और जब उसे कुछ कहना होता है तो वह हीला-हवाला नहीं करती। उसे किसी का डर नहीं है। यहाँ तक कि घर के सामने तैनात पुलिसवालियाँ भी उसे हैरत से देखती हैं।

"क्या तुम हमेशा वही कहती हो जो सोचती हो?"

"हमेशा!"

जब से मैं उससे मिली हूँ, वह मुझे हँसाती रही है। और मुझे इस बारे में सोचने को मजबूर करती रही है कि मैं बिना कभी शब्दों में सोचे क्या कुछ अपने अन्दर जीती रही हूँ। मेरी तालीम की कमी मुझे उस हिसाब से अपाहिज बनाती है, और मेरा ज़िन्दगी भर का दब्बूपन हर चीज़ को मेरे भीतर ताले में बन्द रखता है। लेकिन नसीम को पता है कि क्या कहना है।

"मर्द और औरतें बराबर हैं। हमारे एक-से काम और फ़र्ज़ होते हैं। मुझे अच्छी तरह मालूम है कि इस्लाम मर्दों को कुछ ज़्यादा काबिल और ऊँचा मानता है, लेकिन यहाँ मर्द हम पर पूरी तरह हावी होने के लिए इसका फ़ायदा उठाते हैं। एक औरत को अपने बाप, अपने भाई, अपने चाचा-मामा, अपने पति और आख़िर में अपने गाँव, सूबे और मुल्क के हर आदमी का हुक्म मानना चाहिए।

"मैंने अख़बारों में तुम्हारी कहानी पढ़ी थी, और बहुत-से लोग तुम्हारे बारे में बातें करते हैं। लेकिन तुम - क्या तुम अपने बारे में बात करती हो? तुम इज़्ज़त के साथ अपनी

बदकिस्मती का ज़िक्र करती हो, और फिर सन्दूक की तरह बन्द हो जाती हो। यह हादसा हमारे मुल्क में आधी औरतों के साथ होता है। वो तकलीफ़ और ताबेदारी के सिवा और कुछ नहीं हैं, और कभी हिम्मत नहीं करतीं कि जो वो महसूस करती हैं, उसे कहें या अपनी आवाज़ बुलन्द करें। अगर उनमें से एक 'ना' कहने की जुर्रत करती है तो उसे अपनी जान का ख़तरा रहता है, या कम-से-कम पिटाई का। मैं तुम्हें एक मिसाल दूँगी। एक औरत फ़िल्म देखने जाना चाहती है, और उसका शौहर उसे इजाज़त नहीं देता। क्यों? क्योंकि वह उसे जाहिल बनाये रखना चाहता है। तब उसके लिए आसान है कि वह औरत को कुछ भी उलटी-सीधी पढ़ा सके, और उसके लिए अपनी मन मर्ज़ी से किसी भी चीज़ की मनाही कर सके। एक आदमी अपनी बीवी से कहता है, 'तुम्हें मेरा हुक्म मानना होगा, बस, इसके आगे कुछ नहीं!' और वह कभी पलट कर जवाब नहीं देती, लेकिन मैं, मैं उसकी जगह जवाब देती हूँ।

"कहाँ लिखा है यह? और अगर पति जाहिल हो, तब? अगर वह उसे मारता है, तब? क्या वह सारी ज़िन्दगी एक जाहिल आदमी से मार खाते हुए गुज़ार दे? जबकि आदमी यह सोचता रहे कि वह अक्लमन्द है?

"बीवी को पढ़ना-लिखना नहीं आता। उसके लिए दुनिया का वजूद सिर्फ़ उसके शौहर के ज़रिये है। वो कैसे बग़ावत करेगी? मैं यह नहीं कह रही कि पाकिस्तान में सारे मर्द ऐसे ही हैं, लेकिन उन पर भरोसा करना बहुत मुश्किल है। बहुत-सी बे-पढ़ी-लिखी औरतों को अपने हकों की जानकारी नहीं है। तुम्हें अपने हकों के बारे में पता चल गया, बदकिस्मती से, क्योंकि तुम बिलकुल अकेली पड़ गयीं, किसी 'जुर्म' की कीमत चुकाते हुए जो फ़र्ज़ी तौर पर तुम्हारे भाई ने किया - सो तुमने तो ख़ुद कुछ किया भी नहीं था। लेकिन तुममें मुकाबला करने की हिम्मत थी। ख़ैर, तुम्हें मुकाबला करना जारी रखना होगा। मगर इस बार तुम्हें अपने ख़िलाफ़ जद्दो-जेहद करनी है, तुम बहुत ख़ामोश हो, बहुत गुमसुम हो, बहुत शक्की हो... तुम तकलीफ़ सह रही हो। तुम्हें इस कैदख़ाने को तोड़ कर बाहर निकल आना होगा, जहाँ तुम ख़ुद को बन्द रखती हो। मुख़्तार, तुम मुझे सब कुछ बता सकती हो।"

□

आख़िरकार, मैं नसीम के आगे दिल खोल पाती हूँ, और उसे सब कुछ बता भी देती हूँ। बेशक, वह मेरी कहानी तो जानती ही है, लेकिन उसी तरह जैसे पुलिस, अख़बार वाले और जज उसे जानते हैं : मुल्क के अख़बारों से छाँटी गयी एक ख़बर के तौर पर, जो बाकी ख़बरों से थोड़ी ज़्यादा अहम है।

वह उस सब को सुनती है जो मैंने कभी किसी को नहीं बताया - दोस्ती और

दर्दमन्दी से कान देती हुई।

वह नैतिक और शारीरिक कष्ट, वह शर्मिन्दगी, वह मरने की ख़्वाहिश, मेरे सिर के अन्दर वह गड्ड-मड्ड जब मैं अपने घर को जाने वाले रास्ते पर अकेली वापस आयी थी और किसी मरते हुए जानवर की तरह बिस्तर पर ढह पड़ी थी... मैं नसीम को वह सब बता पाती हूँ, जो मेरे लिए अपनी माँ या बहनों को भी बता पाना मुमकिन नहीं है, क्योंकि जब मैं एक छोटी-सी बच्ची थी तभी से मैंने कुल जमा जो कुछ सीखा है, वह है : ख़ामोश रहना।

बाद में, जब मैं 2003 के उस वक्त के फ़ोटो देखूँगी जब लाहौर हाईकोर्ट में मेरे मुकदमे की अपील की जा रही थी तो कभी-कभी मैं ख़ुद को नहीं पहचान सकूँगी। मैं मरियल और भूत की मारी दिखती हूँ, जैसी उस तस्वीर में जो तब ली गयी थी जब मैं पहली बार इस्लामाबाद में स्थित एक पाकिस्तानी एन.जी.ओ.- स्ट्रेन्थनिंग पार्टिसिपेटरी ऑर्गेनाइज़ेशन - के नुमाइन्दे से मिली थी। वह इस्लामाबाद से इतनी दूर चल कर मुझसे मिलने मेरे गाँव आया था और यह उसकी बदौलत हुआ कि मेरे स्कूल की योजना में कैनेडा की दिलचस्पी हुई। उस तस्वीर में मैं सिकुड़ी हुई हूँ, इतनी सिमटी हुई और उदास कि मैं मुश्किल से अपनी तरफ़ देख पाती हूँ।

जब से नसीम इस संघर्ष में मेरी बहन बनी है, मैंने अपना भरोसा फिर से हासिल कर लिया है। अब जबकि मैं फिर से खाने-पीने लगी हूँ, मेरे गाल पहले से ज़्यादा गोल-मटोल हो गये हैं और मेरी आँखों में एक पुरसुकून चमक है, क्योंकि मैं सो पाती हूँ।

मुझे इसका अन्दाज़ा ही नहीं था कि अपने दर्द के बारे में, एक राज़ के बारे में जो शर्मनाक लगता है, बातें करने से मन और जिस्म, दोनों आज़ाद हो सकते हैं।

तकदीर

मैं यह जाने बग़ैर बड़ी हुई कि मैं कौन थी। नज़रों से ओझल। वैसी ही रूह ले कर जैसी घर की दूसरी औरतों की थी। जो भी मैंने सीखा, वह मैंने दूसरों की बातों से चुराया, जब भी मैं ऐसा कर सकी।

मिसाल के लिए, मुमकिन है कोई औरत कहती, "देखा, उस लड़की ने क्या किया? अपने ख़ानदान को बदनाम कर दिया! उसने उस लड़के से बात की! अब उसकी कोई इज़्ज़त नहीं रही।"

तब मेरी माँ मेरी तरफ़ मुड़ती।

"देखा, पुत्तर, इन लोगों के साथ क्या हो रहा है? यह हमारे साथ भी हो सकता है। होशियार रहना!"

लड़कियाँ जब बहुत छोटी होती हैं तब भी उन्हें लड़कों के साथ खेलने की इजाज़त नहीं दी जाती। अगर कोई बच्चा अपनी चचेरी-ममेरी बहन के साथ कंचे खेलता पाया जाता है तो उसे अपनी माँ से मार पड़ती है।

बाद में, माँएँ ऊँची आवाज़ में नुक्ता-चीनी करती हैं, ताकि उनकी बेटियाँ सुन सकें। अक्सर ये बातें बहू को सुना कर कही जाती हैं।

"तू अपने ख़सम की बात नहीं सुन रही! जल्दी से उसकी ख़िदमत नहीं कर रही।"

यही वह तरीका है जिससे छोटी लड़कियाँ, जिनकी अभी शादी नहीं हुई, यह सीखती हैं कि उन्हें क्या करना है और क्या नहीं करना है। दुआ और नमाज़ के सिवा, यही वह तालीम है जो हमें दी जाती है। और यह हमें शक-शुब्हा, ताबेदारी, दबना, डर और ज़िल्लत की हद तक मर्दों की इज़्ज़त करना सिखाती है। यह हमें सिखाती है कि हम ख़ुद को भुला दें।

बचपन में मैं शक्की नहीं थी। न अन्दर सिमटी हुई न ख़ामोश। मैं आसानी से हँस पड़ती थी। मेरी अकेली राज़दार मेरी दादी थी जिसने मुझे पाला-पोसा और जो अब

भी हमारे साथ रहती है। हमारी तहज़ीब में बच्चे को माँ के अलावा किसी दूसरी औरत के सुपुर्द करना आम बात है।

दादी अब काफ़ी बूढ़ी हो गयी है, और थोड़ी-सी अन्धी भी। उसे अपनी उमर नहीं मालूम है, उसी तरह जैसे मेरे माँ-बाप को भी नहीं मालूम। इन दिनों मेरे पास एक पहचान पत्र है, लेकिन दादी का दावा है कि इस काग़ज़ में जो लिखा है, मैं उससे एक साल बड़ी हूँ। यहाँ गाँव में ऐसी चीज़ों की कोई अहमियत नहीं है। तुम्हारी उम्र तुम्हारी ज़िन्दगी है, गुज़रता हुआ वक्त, मौसम...

एक दिन फ़सलों की कटाई के दौरान, तुम्हारे घरवालों में से कोई कह सकता है, "तू अब दस साल की हो गयी है।"

किसी को भी अब किसी की उमर सही-सही छै महीने या एक साल से ज़्यादा नज़दीक नहीं मालूम है। तुम्हें भूल से तुमसे पहले का या बाद का बच्चा भी समझ लिया जा सकता है। गाँवों में कोई रजिस्ट्री के दफ़्तर तो होते नहीं। बच्चा पैदा होता है, जीता है, बड़ा होता है, और यही असली चीज़ है।

जब मैं लगभग छै साल की थी, मैं घर के सारे काम-काज में अपनी माँ और चाची का हाथ बटाने लगी थी। अगर मेरा बाप ढोर-डंगरों के लिए कुछ चारा लाता तो मैं भी थोड़ा-सा काट देती। कभी-कभी मैं घास काटने में उसकी मदद करने के लिए खेतों में भी जाती। मेरे बाप की एक छोटी-सी दुकान थी जहाँ वह लकड़ी चीरता था, और जब कभी वह बाहर का काम करता, खेती-बाड़ी का ज़िम्मा मेरे भाई हज़ूर बख़्श पर रहता।

वक्त के साथ कुनबा बढ़ा; एक बहन, नसीम, एक और बहन, जमाल, जो अफ़सोस है कि हमें छोड़ गयी; फिर रहमत और फ़ातिमा। आख़िरकार मेरी माँ का दूसरा बेटा : शकूर। कुनबे का आख़िरी लड़का।

कभी-कभार मैं अपनी माँ को यह कहते सुनती थी कि अगर अगले बच्चे के तौर पर ख़ुदा उसे एक लड़का दे दे और फिर कुछ भी नहीं, तो वह तसल्ली कर लेगी। यह इस बात को मान लेने का एक तरीका था कि उसके काफ़ी बच्चे हो गये हैं। लेकिन शकूर के बाद तस्मिया आ पहुँची, आख़िरी बच्ची।

मेरे दो भाइयों के बीच उमर का भारी फ़र्क है, लेकिन लड़कियाँ, ज़्यादा नज़दीक हैं। मुझे कपड़े की गुड्डियों के वो खेल याद हैं जो हम खेला करते थे। हम खेल-खेल में गुड्डे-गुड्डियों की आगे चल कर शादियों की बातें भी करते थे। मिसाल के लिए मैं एक गुड्डा लेती और मेरी बहन एक गुड्डी, और बातचीत शुरू हो सकती थी।

"तू अपनी बेटी मेरे मुण्डे को देना चाहती है?"

"हाँ ठीक है, लेकिन शर्त यह है कि तू भी ऐसा ही करेगी : तू अपना दूसरा मुण्डा मेरी दूसरी कुड़ी को दे दे।"

''नहीं, मैं अपना बेटा नहीं दूँगी। मेरे बेटे की तो पहले ही से मेरे चाचा की लड़की से कुड़माई हो गयी है।''

हम माँ-बाप की मर्ज़ी से तय की गयी इन शादियों के इर्द-गिर्द झगड़े भी गढ़ लेते थे, उन बातों की नकल करते हुए जो हमने अपने आस-पास के बड़े-बुज़ुर्गों के मुँह से सुनी थीं। ये गुड्डे-गुड्डियाँ बुज़ुर्गों की (माँ-बाप, बड़े भाई, यहाँ तक कि दादियों-नानियों की भी) नुमाइन्दगी करती थीं और बच्चों की भी - एक पूरा कुनबा। कभी-कभी हमारे खेल में घर से ढूँढे गये तमाम चिथड़ों से बनी बीस-बीस गुड्डियाँ तक शामिल रहतीं। लड़कियों और लड़कों में फ़र्क का पता उनके पहरावे से चलता : लड़के पतलूनें और बड़ी सफ़ेद कमीज़ें पहनते; लड़कियों के सिर चादर या दुपट्टे से ढँके होते, और हम गूँथी गयी लीरों के टुकड़ों से उनके लिए लम्बे-लम्बे बाल बना देते। हम उनके चेहरे बनाते थोड़े-से साज-सिंगार से, नाक के छोटे-छोटे लौंग और कानों की बालियाँ। गहने खोजना सबसे मुश्किल होता, क्योंकि हम उन्हें घर की औरतों के फटे-पुराने फेंके गये कपड़ों से ही बना सकते थे जिनमें छोटे-छोटे मनके और सलमे-सितारे टँके होते।

हम यह छोटा-सा चिथड़े के गुड्डे-गुड्डियाँ वाला पूरा कुनबा, बड़े-बुज़ुर्गों से दूर, कहीं अलग छाया में कायम करते, क्योंकि अगर घर में कोई छोटी मगर दिलचस्प बहस हुई होती तो हम गुड्डे-गुड्डियों के सहारे उसकी नकल करना पसन्द करते, और हमें इस बात का पक्का इन्तज़ाम करना होता कि कोई हमें सुन न सके! अपने ख़ज़ाने को धूल-मिट्टी से बचाने के लिए, हम उन गुड्डे-गुड्डियों को ईंटों पर सजा देते। और फिर शादियों का वह अद्भुत पेचीदा कारोबार दोबारा शुरू हो सकता था।

''तू, तू अपनी भांजी के लिए एक मँगेतर चाहती है? वो तो अभी अपनी माँ के पेट से बाहर ही नहीं आया है।''

''अगर बेटा हुआ तो उसको मुझे दे देना। अगर लड़की हुई तो मैं तुझे अपना बेटा दे दूँगी।''

''लेकिन तेरे बेटे को मेरे घर रहना होगा। और उसे अपने साथ एक तोला सोना लाना होगा। और कुछ बालियाँ।''

❒

जब मैं नसीम को रिश्ते की उस बहन के बारे में बताती हूँ जिसकी शादी तब हुई जब मैं तकरीबन सात या आठ साल की थी तो मैं इतना हँसती हूँ जितना कि मैं एक बहुत, बहुत लम्बे अर्से से नहीं हँसी हूँ। वो पहला लम्बा सफ़र था जिस पर जाने का मौका किस्मत से मुझे उन दिनों मिला था। मैं अपने चाचा के साथ अपने घर से लगभग तीस मील दूर एक गाँव के लिए रवाना हुई थी। कोई सड़क नहीं थी, सिर्फ़ कच्चा रास्ता था,

और मौसम भयानक था, मूसलाधार बारिश। जैसा कि आम तौर पर होता था, हम साइकिलों से सफ़र कर रहे थे। तीन साइकिलें जिन पर घर के सब लोग लदे थे। मैं अपने चाचा की साइकिल के डण्डे पर बैठी थी, जबकि कोई और हैण्डल पर टिका हुआ था और आख़िरी सवारी कैरियर पर सवार थी। बारिश बेतहाशा हो रही थी, लेकिन हम बच्चे ख़ुश थे कि हम उस रस्म-अदायगी के मौके पर जा रहे थे, जहाँ हम अपने रिश्ते के भाई-बहनों से मिल सकेंगे और उनके साथ खेल सकेंगे।

बहरहाल, हमारे उस जोखिम-भरे सफ़र के दौरान, मेरी एक चाची अपने सारे भड़कीले बनाव-सिंगार के साथ साइकिल के कैरियर से नीचे गिर पड़ी। उसकी सुन्दर काँच की चूड़ियाँ चूर-चूर हो गयीं और उसे थोड़ी चोट भी लग गयी। सब घबरा गये क्योंकि वह दर्द से चीख़ रही थी और शीशे की उन नन्ही-नन्ही किरचों को देख कर रो रही थी जो धनुक के हर रंग की थीं... हमें उसकी कलाइयों पर पट्टियाँ बाँधनी पड़ीं, और फिर हम बच्चों ने एक-दूसरे की तरफ़ देखा और बेसाख़्ता हँसी में फूट पड़े। आख़िर में हमारे साथ-साथ सब को हँसी आ गयी - और बाकी सफ़र, जो लगता था पूरा ही नहीं होगा, हम पागलों की तरह हँसते रहे। बेचारी चाची, वह भी अपनी नयी ''पट्टियों की चूड़ियाँ'' पहने हँस रही थी।

आगे चल कर, मैं नसीम को अपनी शादी के बारे में बताती हूँ। भले ही वह एक पढ़ी-लिखी औरत है, फिर भी नसीम को रस्म-रिवाज की इज़्ज़त करनी ही पड़ती है, और उसके घरवालों ने काफ़ी अर्सा पहले ही उसके लिए एक शौहर चुन लिया है। हालाँकि वह ठीक-ठीक उसके ख़यालों की मुताबिक नहीं है। लिहाज़ा, अपने माँ-बाप से बेअदबी न करना चाहते हुए भी, वह इस शादी से निकलने की कोशिश कर रही है। बिना बहस किये, बिना कोई मुसीबत खड़ी किये। नसीम सत्ताइस साल की है, अपने पेशे के लिए पढ़ाई कर रही है, और चूँकि हाल में उसके मँगेतर ने सुध भी नहीं ली है, उसे उम्मीद है... कि वह ख़ुद-ब-ख़ुद इरादा छोड़ देगा, कि वह थक जायेगा या किसी और को ढूँढ लेगा। वह कहती है कि हर हाल में, जितनी देर तक वह अपने इरादे पर कायम रह सकेगी, कायम रहेगी।

फ़िलहाल, अपने सपनों के आदमी से उसकी मुलाकात नहीं हुई, और यह हमारी तहज़ीब की सबसे बड़ी पाबन्दियों में से एक है। एक जवान लड़की को ख़ुद अपने लिए पति चुनने का हक नहीं है। कुछ औरतें, जिन्होंने यह जोखिम उठाया है, उन्हें धमकियाँ दी गयी हैं, ज़लील किया गया है, पीटा गया है, और कभी-कभी जान से भी मार दिया गया है, हालाँकि अब नये कानून मौजूद हैं जो चुनने के इस हक की हिमायत करते हैं, उसूली तौर पर... शरीअत, बहरहाल, इस हक की हिमायत नहीं करती, और हर जात के अपने रिवाज होते हैं। ऐसे शादीशुदा जोड़ों को, जो ख़ुद अपना फ़ैसला करते हैं, अपनी

शादी को कानूनी साबित करने के लिए भारी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। मिसाल के लिए, औरत पर ज़िना का इल्ज़ाम लगाया जा सकता है, एक ऐसे गुनाह का जिसमें बदकारी, शादी के बिना जिस्मानी ताल्लुक बनाना शामिल हैं। औरत को फिर संगसार करने की सज़ा भी दी जा सकती है। हम लगातार अपने मज़हब और अपनी हुकूमत के अलग-अलग कानूनी निज़ामों के बीच फँसते रहते हैं, और कबायली निज़ाम का ज़िक्र तो करना ही क्या, इससे पेचीदगी ही बढ़ेगी, क्योंकि हर कबीले का अपना कायदा होता है जो सरकारी कानून को पूरी तरह नज़रन्दाज़ कर देता है, और कभी-कभी शरीअत को भी।

रहा तलाक, तो वह भी पेचीदा मामला है। तलाक सिर्फ़ पति ही दे सकता है। जब कोई औरत सरकारी अदालत में तलाक हासिल करने की कार्रवाई शुरू करती है तो शौहर का ख़ानदान ख़ुद को "बेइज़्ज़त" किया गया मान सकता है और "सज़ा" की माँग कर सकता है। इस सबके ऊपर, सरकारी अदालतों का आसरा लेना हमेशा किसी कानूनी फ़ैसले तक नहीं पहुँचाता।

मेरे मामले में, मेरी शादी मेरी रज़ामन्दी के ख़िलाफ़ नहीं थी (और तभी मुझे पता चला था कि मैं अट्ठारह बरस की हो गयी हूँ!)।

मुझे याद है मेरी बहन जमाल दबी-दबी हँसी हँसते हुए मेरे पास आयी थी।

"तेरे कुड़म आये हुए हैं," उसने मेरे कान में फुसफुसा कर कहा था।

मैं ख़ुशी और शर्म दोनों जज़्बात के बीच झूल रही थी। ख़ुशी क्योंकि मेरी शादी होने वाली थी और मैं एक नयी ज़िन्दगी शुरू करने जा रही थी; शर्म क्योंकि मेरी बहन हँस रही थी, चचेरी बहनें मज़ाक कर रही थीं, और मुझसे उम्मीद की जा रही थी कि मैं इस शानदार ऐलान को ले कर होने वाली दिल्लगी में शामिल हूँगी, मानो इस सब में मुझे कोई दिलचस्पी ही न हो।

"तेरा शहज़ादा आया है... "

"उसे कहीं और जाने दे!"

बहरहाल, हर चीज़ *कहीं और* ही होती है - मर्दों के बीच। सभी चाचे, मामे, भाई इकट्ठा हैं, दूल्हे के घरवालों समेत। कोई एक तारीख़ सुझाता है और बातचीत शुरू होती है, क्योंकि उन्हें ऐसा दिन खोजना है जो सबके लिए सहूलत वाला हो, जो चाँद, बोआई, कटाई के साथ ठीक बैठे।

"जुम्मे को नहीं," कोई कह सकता है, "एक और चचेरे भाई की शादी है।"

"तो इतवार सही।"

"नहीं, इतवार नहीं," कोई और आदमी ऐतराज़ करता है। "वह तो मेरा पानी ला कर खेत सींचने का दिन है, मैं ख़ाली नहीं हूँ।"

आख़िरकार, वो एक ऐसा दिन तय कर लेते हैं जो सबके लिए तसल्लीबख़्श है। औरतों को बोलने का कोई हक नहीं है। लड़की को तो बिलकुल नहीं।

उस शाम घर का मुखिया घर आ कर यह ख़बर अपनी बीवी को देता है, और इस तरह से किसी लड़की को पता चलता है कि फ़लाँ दिन उसका ब्याह होगा। मुझे अपनी शादी का दिन और महीना याद नहीं, लेकिन मुझे इतना ज़रूर मालूम है कि तारीख़ रमज़ान शुरू होने से एक महीना पहले की तय हुई थी।

जब मुझे अपने होने वाले शौहर का नाम पता चला था, मैंने उसे याद करने की कोशिश की थी। मैंने उसे चलते-फिरते ही कहीं देखा था, सड़क पर जाते हुए या किसी रस्म-अदायगी के दौरान। मुझे इतना याद आया था कि वह बुरी तरह लँगड़ाता था, ऐसे आदमी की तरह जिसे पोलियो हुआ हो। ख़ैर, मैंने किसी से कुछ नहीं कहा। मैंने बस यही सोचा था, "अच्छा, तो वो है... "

लेकिन मुझे घबराहट थी। मेरे बाप ने यह शौहर नहीं चुना था, बल्कि मेरे चाचा ने। और मैंने हैरत से सोचा था - वह मेरी शादी इसी आदमी से क्यों कर रहा है। अपनी भतीजी उसे क्यों दे रहा है? उसका चेहरा तो ख़ूबसूरत था, लेकिन मैं उसे जानती नहीं थी, और वह लँगड़ाता था।

जब नसीम ने मुझसे पूछा था कि जो भी हो, मैं उसे पसन्द करती थी या नहीं, मुझे धक्का लगा था - मुझे ऐसे सवालों का जवाब देने की आदत नहीं थी। लेकिन वह हँसी थी, और इसके बावजूद जानना चाहती थी।

"मैं उसे ज़्यादा पसन्द नहीं करती थी। अगर मैं मना करने के काबिल होती, मैंने मना कर दिया होता।"

उसके बारे में मुझे बस यही मालूम था कि उसके माँ-बाप गुज़र चुके थे। और यह कि वह अपने बड़े भाई के साथ हमारे घर आया था। एक बार जब दिन तय हो गया था, मेरी कुड़माई आप-से-आप हो गयी थी। अब हर औरत के मुँह से नसीहतों की झड़ी लग गयी, और वह हमेशा एक-सी होती।

"तू अपने शौहर के घर जायेगी। अपने माँ-बाप की, अपने घर के नाम की इज़्ज़त बढ़ाने की कोशिश करना।"

"जो वो तुझसे कहे, वही करना। उसके घरवालों की इज़्ज़त करना..."

"तू उसकी इज़्ज़त है, और उसके घरवालों की। यह याद रखना..."

हमारी माँएँ हमें कुछ नहीं बतातीं। यह मान लिया जाता है कि हमें पता होगा शादी में क्या कुछ होता है। दरअसल, मुझे यह फ़िक्र नहीं थी कि मुझे अपने शौहर का लिहाज़ करना होगा, क्योंकि पाकिस्तान में सभी औरतें ऐसा करती हैं। रही बाकी बातें, तो वह एक ऐसा राज़ है, जिसे शादीशुदा औरतें लड़कियों से नहीं बाँटतीं। और हमें कोई सवाल

करने का हक नहीं है। बहरहाल, शादी करना और बच्चे पैदा करना ज़िन्दगी की मामूली सच्चाइयाँ हैं। मैंने औरतों को बच्चा जनते देखा है, मुझे जो जानने की ज़रूरत है, वह सब कुछ मुझे मालूम है। लोग गानों में और दूसरे मुल्कों में प्यार-मुहब्बत की बातें करते हैं, लेकिन वह सब मेरे लिए नहीं है। एक दिन मैंने अपने चाचा के घर टेलिविज़न पर एक फ़िल्म देखी : एक ख़ूबसूरत औरत चेहरे पर ख़ूब बनाव-सिंगार किये और अपनी बाँहें लहराती हुई, अपने हाथ एक आदमी की तरफ़ बढ़ा रही थी जो उसे रुला रहा था। मुझे कुछ पता नहीं कि वह उर्दू में क्या कह रही थी, लेकिन मेरे ख़याल से वह अपना ख़ासा तमाशा बना रही थी।

हमारे घर में सब कुछ सीधा-सादा था, पहले से तय किया-कराया। मेरे माँ-बाप ने दहेज का इन्तज़ाम किया था, और मेरी माँ बरसों से मेरी शादी के लिए छोटी-छोटी चीज़ें इकट्ठी करती रही थी, जैसे गहने, चादरें, कपड़े। लकड़ी के सामान का मामला आख़िरी वक्त में निपटाया जाता है। मेरे बाप ने मेरे लिए एक पलँग बनवाया था। अपनी शादी के रोज़ मैंने रिवाज पर कड़ाई से अमल करते हुए वो कपड़े पहने जो मेरे होने वाले शौहर ने मेरे लिए ख़रीदे थे। हमारी तहज़ीब में दुल्हन लाल जोड़ा पहनती है जिसका ख़ास मतलब है और वह बड़ी अहमियत रखता है। रस्मों से बहुत पहले दुल्हन को अपने बालों की दो लम्बी चोटियाँ गूँथनी होती हैं, और उसकी शादी से एक हफ़्ता पहले दूल्हे के घर की औरतें उन्हें खोलने के लिए आती हैं - अपने साथ वह सारा खाने-पीने का सामान ले कर जिसे दुल्हन उस आख़िरी हफ़्ते के दौरान खायेगी। इस दोहरी रस्म का क्या मतलब है, यह तो मुझे मालूम नहीं, पर मैंने वैसा ही किया था और शादी के रोज़ मेरे बाल बहुत ख़ूबसूरत लहरदार हो गये थे।

इसके बाद मेंहदी की रस्म की बारी आयी। मेरी होने वाली ससुराल की औरतों ने मेरी हथेलियों और पैर के तलवों पर मेंहदी लगायी। फिर ग़ुसल की रस्म हुई और दुल्हन को कपड़े पहनाने की : खुली शलवार, लम्बी कमीज़, बड़ी-सी चद्दर, और सब लाल रंग की। मौके का लिहाज़ करते हुए मैंने बुर्का भी पहना, जो मैं पहले भी रिश्तेदारों से मिलने के लिए बाहर जाते हुए पहनती रही हूँ, इसलिए मुझे उसकी आदत है। कभी-कभी मैं घर से निकलते वक्त उसे पहन लेती थी और जब मैं काफ़ी दूर आ जाती तो मैं अपना चेहरा खोल लेती, लेकिन अगर मैं अपने घरवालों में से किसी को देखती तो मैं लिहाज़ के ख़याल से चेहरे को फिर से ढँक लेती थी। उसे पहने-पहने देखना मुश्किल नहीं है, क्योंकि इन बुर्कों के छेद उन बुर्कों के छेदों से साफ़ तौर पर ज़्यादा बड़े हैं जो अफ़ग़ानिस्तान में पहने जाते हैं। ज़ाहिर है कि यह पहनने के लिए आरामदेह चीज़ नहीं है, लेकिन यहाँ औरतें उसे शादी से पहले ही पहनती हैं, और बहुत-सी शादीशुदा औरतें उसे छोड़ भी देती हैं।

मेरा नाना जिसकी बहुत-सी बीवियाँ थीं, हमेशा कहा करता था, "मेरी बीवियों में से किसी ने बुर्का नहीं पहना। अगर वह उसे पहनना चाहे तो इसका हक उसे है, लेकिन उस हालत में उसे ज़िन्दगी भर उसे पहनना होगा।"

आम तौर पर, इमाम निकाह पढ़वाने के लिए मेंहदी के रोज़, या फिर शादी के रोज़ आता है। मेरे मामले में, यह रस्म मेंहदी के रोज़ हुई थी। जब इमाम ने मुझसे पूछा कि क्या मैं दूल्हे को अपने शौहर के तौर पर मंज़ूर करती हूँ तो मैं इतना शरमा गयी कि मैं जवाब ही नहीं दे सकी - न हाँ, न ना! मैं अपने मुँह से एक लफ़्ज़ भी नहीं निकाल पायी, लिहाज़ा इमाम ने जवाब के लिए मुझ पर ज़ोर दिया।

"हाँ तो? बता मुझे! बता मुझे!"

वहाँ बैठी औरतों को 'हाँ' का इशारा करने के लिए मेरा सिर हिलाना पड़ा।

"शर्मीली है जी," उन्होंने समझाया, "मगर उसने हाँ कह दिया है, बस!"

मेरी शादी के दिन गोश्त और चावल की दावत के बाद (जिसका मैंने एक कौर भी नहीं खाया) हमें दूल्हे के घरवालों का इन्तज़ार करना था कि वो आ कर मुझे ले जायें। इस बीच, कुछ और रस्में बाकी थीं।

मेरे बड़े भाई को मेरे बालों पर थोड़ा-सा तेल लगाना और मेरी बाँह पर कढ़ाईदार कपड़े का बाज़ूबन्द बाँधना था। एक औरत ने तेल का छोटा-सा कटोरा पकड़ रखा था और मेरे भाई को ख़ुद पहले रस्म पूरी करने के लिए उसे एक सिक्का देना पड़ा था। उसके बाद, मेरे सारे घरवालों ने बारी-बारी से उँगलियाँ तेल में डुबोयी थीं और मेरे सिर से लगायी थीं।

दूल्हे को अब इजाज़त दी गयी कि वह घर के अन्दर दाख़िल हो सके। मैं अभी तक हकीकत में उससे नहीं मिली थी, और वह बुर्के के पीछे मेरा चेहरा नहीं देख सकता था। मैं अपनी सभी चचेरी-ममेरी बहनों के बीच बैठी इन्तज़ार करती रही, जिनका काम उसे तब तक अन्दर आने से रोकना था जब तक वह उन्हें एक छोटा-सा नोट न दे दे। एक बार उसने उन्हें पैसे दे दिये तो उसे अन्दर आने की इजाज़त थी। वह मेरी बग़ल में बैठ गया, और मेरी बहनों ने उसे एक तश्तरी में दूध का गिलास ला कर दिया। गिलास ख़ाली करने के बाद उसने एक और छोटा नोट उन्हें पकड़ा दिया। फिर तेल की रस्म दोबारा से शुरू हुई, इस बार कुछ फ़र्क के साथ। जिस औरत को तेल के कटोरे की ज़िम्मेदारी दी गयी थी, उसने रूई के छोटे-छोटे फाहे तेल में डुबोये और उन्हें दूल्हे के चेहरे पर फेंकते हुए कहा, "ले, ये रहे तेरे लिए फूल।"

फिर उसने रूई की एक और गोली मेरे दायें हाथ की हथेली में रख दी, जिसे मुझे पूरी ताकत से कस कर भींच रखना था ताकि दूल्हा मेरी उँगलियाँ न खोल सके। यह एक तरह से ताकत का इम्तहान था : अगर वह मेरी मुट्ठी खोल लेता है, तो मेरे

लिए बहुत बुरा है, वह जीत गया है। अगर नहीं खोल पाता तो हर कोई उस पर हँसता है।

"कैसा मर्द है तू - उसकी मुट्ठी नहीं खोल सका!"

फिर उसका फ़र्ज़ बनता है कि वह मुझसे पूछे कि मैं क्या चाहती हूँ।

"अगर तू चाहता है कि मैं मुट्ठी खोल दूँ तो तुझे मुझको एक गहना देना होगा।"

और दुल्हन इस खेल को शुरू से दोबारा खेल सकती है, जिसमें औरतें उसकी मुट्ठी रूई की गोली पर भींचती हैं और शौहर एक बार फिर उसकी मुट्ठी खोलने की कोशिश करता है। चचेरी-ममेरी और सगी बहनें, और घेरा बनाये दूसरी लड़कियाँ, आम तौर पर जीतने वाली दुल्हन को बढ़ावा देते हुए चिल्लाती हैं, "उससे यह माँग, और वो माँग... "

मैंने पहली बार अपनी मुट्ठी बन्द की थी, और वो उसे नहीं खोल सका था; दूसरी बार भी उसे कामयाबी नहीं मिली थी और सारी औरतों ने उसकी लू-लू बुलायी थी।

मैं नहीं जानती कि इस रस्म का कोई गहरा मतलब है, या यह कि शौहर को फ़र्ज़ी तौर पर हारना ही होता है, क्योंकि रिवाज के मुताबिक उसे कम-से-कम एक गहना देने का वादा तो करना ही चाहिए। बहरहाल, कशमकश सच्ची होती है - जीतने के लिए तुम्हारा ताकतवर होना ज़रूरी है।

इस मौके पर गाने भी होते हैं जो लड़कियाँ सबसे बड़े भाई को सुनाती हैं। अपने बाप के बाद वही होता है जिसे घर की लड़कियाँ सबसे ज़्यादा प्यार करती और इज़्ज़त देती हैं, और वही होता है जो एक तरह से अपनी बहन को दूसरे आदमी के हाथ सौंपता है।

मुझे ठीक-ठीक याद नहीं कि लड़कियों ने मेरे भाई को क्या गा कर सुनाया था - शायद यह गाना :

> देखती हूँ दक्खिन की ओर
> लगता है कितनी दूर
> आता अचानक है मेरा भाई
> सुन्दर घड़ी से सजी है कलाई
> उसकी चाल में है कितना ग़ुरूर

इस तरह का भोला-भाला गाना तो अब शायद ग़ायब हो जायेगा, चूँकि लड़कियाँ अब रेडियो सुनती हैं, लेकिन बड़े भाई के लिए प्यार और इज़्ज़त बिना तब्दील हुए बनी रहेगी।

सारा कुनबा ख़ुश था, और मैं भी, क्योंकि यह एक जश्न था। लेकिन मैं उदास और फ़िक्रमन्द भी थी क्योंकि मैं उस घर को छोड़ने वाली थी जहाँ मैंने लगभग बीस बरस बिताये थे। यह सब बीत चुका था : अब मैं कभी वहाँ सचमुच *घर पर* नहीं हूँगी। वो

बचकाने खेल, वो हमजोली, वो भाई और बहनें - सब चले जायेंगे! मैं एक बहुत बड़ा कदम उठा रही थी और सब कुछ अपने पीछे छोड़े जा रही थी। मुझे आने वाले वक्त को ले कर फ़िक्र हो रही थी।

दूल्हा उठ खड़ा हुआ। मेरी चचेरी-ममेरी बहनों ने रिवाज के मुताबिक मुझे बाँहों से पकड़ कर उठाया। मुझे ट्रैक्टर से खींची जाने वाली एक बड़ी-सी गाड़ी तक ले आयीं। और फिर रिवाज के मुताबिक ही मेरे सबसे बड़े भाई ने मुझे अपने बाँहों में उठा कर गाड़ी में पीछे की तरफ़ बिठा दिया।

दूल्हे के पुश्तैनी घर के दरवाज़े पर एक छोटा-सा बच्चा इन्तज़ार कर रहा था, जिसका हाथ पकड़ कर दूल्हा उसे घर के अन्दर ले जाने वाला था। किसी ने मुझे मधानी पकड़ा दी और मैं अपने शौहर के पीछे-पीछे घर में दाखिल हुई। आख़िरी रस्म *घुण्ड खुलावी* यानी घूँघट उठाने की थी और मुझे तब तक बुर्का नहीं हटाना था जब तक मेरा शौहर उन नन्ही लड़कियों को कुछ दे न देता जो उसे छेड़ रही थीं।

"चलो, चलो, पैसे निकालो, जब तक ये हमें दो सौ रुपये न दे, घुण्ड मत उठाना।"

"ना, ना, पाँच सौ रुपये।"

"ना जी - जब तक यह हमें हज़ार रुपये न दे, घुण्ड मत हटाना।"

बढ़ते-बढ़ते वो पाँच सौ रुपये तक गया था, जो उस समय बहुत था, इतना कि उससे एक बकरी का बच्चा ख़रीदा जा सकता था। और आख़िरकार उसने मेरा चेहरा देखा था।

जिस कमरे में हमें सोना था, वहाँ चार पलँग थे। हमें अकेले नहीं रहना था।

अपने शौहर के एक कमरे वाले घर में जाने से पहले मैंने इसी तरह अपने जेठ के घर में तीन रातें बितायीं। फिर उसने अपने भाई के घर लौटना चाहा - वह उसके बिना नहीं रह सकता था! बदकिस्मती से, मेरी जेठानी मुझे पसन्द नहीं करती थी और हमेशा मुझ पर कुछ काम न करने का इल्ज़ाम लगाते हुए झगड़ा खड़ा करने की कोशिश करती थी, जबकि वही थी जो मुझे कुछ करने से रोके रखती थी।

चूँकि शादी के उस करारनामे में, जो मेरे घरवालों ने तैयार करवाया था, यह साफ़-साफ़ लिखा था कि मेरा शौहर हमारे साथ रहेगा, इसलिए मैं उस अजीब-सी शादी के सिर्फ़ महीने भर बाद ही अपने घर लौट आयी, और मेरा शौहर मेरे साथ नहीं आया। वह अपने भाई के साथ रहना चाहता था और उसने मेरे बाप के साथ काम करने से इनकार कर दिया। मैं सोचती हूँ कि क्या वह मुझे कभी चाहता भी था, क्योंकि मुझे उससे तलाक लेने में ज़्यादा तकलीफ़ नहीं हुई थी, जिसके ज़रिये उसने मुझे "फ़राग़त" दे दी थी। मैंने उसके गहने उसे लौटा दिये थे। मैं आज़ाद थी। भले ही एक तलाकशुदा औरत हमारी तहज़ीब में अच्छी नज़रों से नहीं देखी जाती। चूँकि किसी औरत के लिए बदनाम हुए

बिना अकेले रहना नामुमकिन है, इसलिए मुझे अपने माँ-बाप के साथ रहना था। मैं अपने घरवालों को अपने रहने-खाने का ख़र्च चुकाने के लिए काम-काज में मदद करती थी। गाँव के बच्चों को कुरान और औरतों को कढ़ाई सिखाने के दौरान मैंने बस्ती में अपनी इज़्ज़त और मान फिर से हासिल कर लिया था। मेरी ज़िन्दगी पुरसुकून थी।

जब तक कि बाईस जून का वह शैतानी दिन नहीं आया था।

❐

किसी जिर्गे के अन्दर कबाइली इन्साफ़ के जो उसूल होते हैं, उनकी जड़ें पुश्तैनी रिवाज में होती हैं, जो मज़हब और कानून से मेल नहीं भी खा सकता। ख़ुद पाकिस्तानी सरकार ने सूबों के गवर्नरों और पुलिस को यह सलाह देने की पहलकदमी की थी कि वो कारो-कारी - यानी इज़्ज़त के नाम पर किये गये जुर्मों के इस मामले की जाँच-पड़ताल में सहूलत देने के लिए "लाज़िमी तौर पर" एक "प्रारम्भिक रपट" दर्ज करें, ताकि किसी संगीन जुर्म के मामले में मुजरिमों को जिर्गे के फ़ैसले की आड़ में ख़ुद को बचाने से रोका जा सके।

और पुलिस लगातार मुझसे अँगूठे का निशान लगा एक कोरा कागज़ हासिल करना चाहती थी। इलाके की पुलिस का इरादा था कि मेरी शिकायत अपनी सहूलत के हिसाब से जोड़ कर लिख लें, जिससे ऊँची जात वालों के साथ किसी भी तरह के पंगे से बचे रहें।

यह नाइन्साफ़ी, यह घटिया बुज़दिली, मर्दों का काम था। गाँव की पंचायतों में जो आदमी घरेलू झगड़ों को सुलझाने के लिए इकट्ठा होते हैं वो सयाने माने जाते हैं, बेशर्म जानवर नहीं। जब मैं जिर्गे के सामने खड़ी हुई तो अपनी जात की मग़रूर शान से भरे हुए एक गरम दिमाग़ नौजवान ने नुकसान पहुँचाने की नीयत से और ताकत के नशे में चूर हो कर, अपनी मर्ज़ी मनवा ली थी। गाँव के सयाने बुज़ुर्ग अब बहुमत में नहीं रहे थे।

और औरतें हमेशा बैठकों से बाहर रखी जाती हैं, हालाँकि वही हैं - माँओं, दादियों और रोज़मर्रा की ज़िन्दगी की हिफ़ाज़त करने वालियों की शक्ल में - जो घरेलू मसलों को सबसे अच्छी तरह जानती हैं। औरतों की अक्लमन्दी को ले कर मर्दों की हिकारत ही उन्हें किनारे पर धकेलती है। मुझमें यह उम्मीद करने की हिम्मत नहीं है कि एक दिन, दूर किसी आने वाले वक्त में, गाँव की कोई पंचायत औरतों की हिस्सेदारी मंज़ूर करेगी।

इससे भी ज़्यादा ख़तरनाक यह है कि झगड़े सुलझाने और जुरमाने वसूलने में माल-मते की तरह औरतों की ही अदला-बदली होती है। और जुरमाना हमेशा एक-सा होता है। जब शारीरिक आकर्षण की मनाही हो, जब पाकिस्तानी समाज में मर्द की इज़्ज़त

औरत में पैवस्त हो तब सारे हिसाबों को चुकता करने के लिए जो अकेला हल वह ढूँढ सकता है, वह जबरी शादी या जबरी ज़िना है। यह तो बरताव का वह तरीका नहीं जो कुरान हमें सिखाती है।

अगर मेरा बाप या चाचा मुझे शादी में किसी मस्तोई को सौंपने के लिए राज़ी हो गया होता तो मेरी ज़िन्दगी जहन्नुम के नज़दीक पहुँच जाती। शुरू-शुरू में इस तरह के समझौतों के पीछे इरादा यह था कि कबीलों और बिरादरियों के ख़ून और ख़ानदान को आपस में मिला कर उनके बीच लड़ाई-झगड़ों को कम किया जाये। मौजूदा हकीक़त बिलकुल अलग है। ऐसी हालत में शादी होने पर बीवी और भी बदसलूकी का शिकार होती है, दूसरी औरतों की दुरदुराहट सहती है, ग़ुलामी के जाल में फँस जाती है। इससे भी बुरा यह है कि रुपये-पैसे के झगड़े निपटाने के लिए कुछ औरतों के साथ बलात्कार किया जाता है, या महज़ दो पड़ोसियों की आपसी जलन की वजह से, और जब इस ज़ुल्म का शिकार होने वाली औरतें इन्साफ़ पाने की कोशिश करती हैं तो उन पर बदकारी का इल्ज़ाम लगाया जाता है, या ख़ुद ग़ैर कानूनी ताल्लुकात बनाने का।

बहरहाल, मेरे घरवाले ज़्यादातर घरानों से कुछ अलग हैं। मैं पंजाब में गूजर बिरादरी का इतिहास नहीं जानती, या यह कि मेरा कबीला कहाँ से आया, या यह भी कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के बँटवारे से पहले इसकी रवायतें या रिवाज क्या थे। हमारी बिरादरी के पुरखे किसान और सिपाही दोनों थे। हमारे देश की सरकारी ज़बान उर्दू है, और बहुत-से पढ़े-लिखे पाकिस्तानी अंग्रेज़ी बोलते हैं, लेकिन यहाँ हम सिर्फ़ सरायकी बोलते हैं, दक्खिनी पंजाब में बोली जाने वाली एक छोटी-सी बोली। मैं सिर्फ़ सरायकी बोलती हूँ।

❐

नसीम मेरी सहेली बन गयी है - वह मेरे बारे में एक-एक चीज़ जानती है। मैं अब भी मर्दों से डरती हूँ, और उन पर भरोसा नहीं करती, लेकिन उसे उनका डर नहीं है।

लड़कियों को तालीम देने, उन्हें पढ़-लिख कर बाहर की दुनिया तक पहुँचने का मौका देने के अलावा जो सबसे ज़रूरी चीज़ मुझे पता चली है, वह है अपने बारे में जानकारी : एक इन्सान के नाते ख़ुद अपनी जानकारी। मैंने औरत के तौर पर जीना और अपनी इज़्ज़त करना सीखा है। अभी तक मेरी बग़ावत मेरे स्वभाव का हिस्सा थी : मैं ख़ुद को और अपने घरवालों को ख़तरे से बचाने की कोशिश कर रही थी। मेरे अन्दर कुछ था जिसे हारना मंज़ूर नहीं था। वरना, मैं ख़ुदकुशी के लालच के आगे झुक गयी होती। कोई बेइज़्ज़ती के बाद कैसे ज़िन्दा बच निकलता है? कोई मायूसी से कैसे जीतता है? पहले तो ग़ुस्से के बल पर, बदला लेने की उस फ़ितरत के सहारे जो मौत के ललचाने

वाले हल का मुकाबला करती है, एक ऐसी फ़ितरत जो किसी शख़्स को उठ खड़े होने, आगे बढ़ने, कदम उठाने पर आमादा करती है। आँधी की चोट से गिरी हुई गेहूँ की बाली फिर से सीधी हो सकती है, या जहाँ गिरी है वहीं पड़े-पड़े सड़ सकती है। पहले-पहले मैं अकेली ही वापस उठ कर खड़ी हुई, और आहिस्ता-आहिस्ता मुझे एहसास हुआ कि मैं एक इन्सान हूँ, जिसके जायज़ अधिकार हैं। मैं ख़ुदा में यकीन रखती हूँ, मुझे अपने गाँव से, पंजाब से, और अपने देश से प्यार है, और मैं इस मुल्क के लिए, बलात्कार की शिकार औरतों के लिए, और लड़कियों की आने वाली पीढ़ियों की ख़ातिर चीज़ों को बदलना पसन्द करूँगी। मैं दरअसल औरतों के हकों के लिए लड़ने वाली सक्रिय कार्यकर्ता नहीं थी, हालाँकि अखबार वाले मुझे ऐसी ही मानते थे। मैं तजुर्बे से गुज़र कर ऐसी बनी, क्योंकि मैं ज़िन्दा बच निकलने वालों में हूँ, मर्दों की हुकूमत में चलने वाली दुनिया में एक सीधी-सादी औरत। लेकिन इज़्ज़त हासिल करने का तरीका मर्दों से हिकारत करना नहीं है।

इस का हल है बराबर वालों की तरह उनसे लड़ने की कोशिश करना।

मीरवाला में हालात कैसे थे

पंजाब के दक्खिन-पश्चिम में, मुज़फ़्फ़रगढ़ ज़िले में, सिन्धु नदी के मैदानों में खोये हुए मेरे गाँव का नाम भी किसी ने कभी नहीं सुना था। पुलिस थाना तीन मील दूर जतोई में है, और सबसे नज़दीकी बड़े शहर, डेरा ग़ाज़ी ख़ाँ और मुलतान, कार से उस सड़क पर तकरीबन तीन घण्टे के फ़ासले पर हैं जो बड़े-बड़े ट्रकों, लदी-फँदी मोटर साइकिलों और भारी गाड़ियों से ठसाठस भरी रहती है। मीरवाला में दुकानें नहीं हैं, और स्कूल भी नहीं था।

मुख़्तार माई स्कूल का आना गाँववालों की दिलचस्पी जगाता है। शुरू-शुरू में, शक से भरी दिलचस्पी और मैं थोड़े-से शागिर्द ही जुटा पाती हूँ। नसीम की मदद से मुझे दरवाज़े-दरवाज़े जा कर माँ-बाप को मनाना है कि वो अपनी बेटियाँ हमारे सुपुर्द करें। ये दरवाज़े हमारे मुँह पर भेड़े तो नहीं जाते, लेकिन बाप हमें समझाते हैं कि लड़कियाँ घर के लिए बनी हैं, पढ़ाई-लिखाई के लिए नहीं। लड़कों में ज़्यादा गुंजाइशें हैं। हो सकता है, जो खेतों में काम नहीं कर रहे, वो पहले ही किसी दूसरे गाँव के स्कूल में जा रहे हों, लेकिन कोई उन्हें जाने के लिए मजबूर नहीं कर रहा था।

हिकमत के साथ काम करने के इस तरीके में बहुत वक्त लगता है। और इसका तो कुदरती तौर पर कोई सवाल ही नहीं है कि मस्तोइयों से इस मामले में बात की जाये। उनके बड़े बेटे "मेरी वजह से" कैद में हैं। और अगर पुलिस मुझे हिफ़ाज़त के बिना एक दिन के लिए भी छोड़ दे तो मैं जानती हूँ कि उनका कबीला एक पल में इसका फ़ायदा उठा लेगा। वो हर किसी से, जो सुनने को तैयार होता है, यह ऐलान करते रहते हैं कि वो मुझसे और मेरे घरवालों से बदला लेने का इरादा रखते हैं।

शुरू-शुरू में स्कूल का एक हिस्सा ही बनाया गया, हमारे अपने वसीलों से : सीधा-सादा और मामूली। कुर्सी-मेज़ें बाद में आयीं, और मुझे अफ़सोस है कि कुछ बच्चों को, जिनमें सबसे छोटे बच्चे भी शामिल हैं, अभी तक ज़मीन पर बैठना पड़ता है।

ख़ुशकिस्मती से मैंने कुछ बड़े पंखे ख़रीदने का इन्तज़ाम कर लिया है जो बच्चों को मक्खियों और गर्मी से कुछ राहत देते हैं।

❐

शुरू में, मेरे पास सिर्फ़ एक टीचर है : एक औरत। द न्यूयॉर्क टाइम्स के निकोलस डी. क्रिस्टॉफ़ के एक लेख की बदौलत, जो दिसम्बर 2004 में छपा, इस स्कूल पर इस्लामाबाद में कैनेडा की हाई कमिशनर, मिसिज़ मार्गरेट ह्यूबर का ध्यान जाता है। कैनेडा 1947 से ही पाकिस्तान के साथ स्वास्थ्य, शिक्षा और बेहतर प्रशासन जैसे मामलों में मिल कर काम करता रहा है, और सियासी तब्दीलियों ने भी इस साझेदारी में रुकावट नहीं डाली है, जो पाकिस्तान के स्थानीय ग़ैर सरकारी संगठनों के नुमाइन्दों की मदद से लागू की जाती रही है। कैनेडा ने यहाँ की तरक्की के लिए लाखों डालर ख़र्च किये हैं।

आख़िरकार, मुस्तफ़ा बलोच, जो एस.पी.ओ. का एक अफ़सर है, यह देखने के लिए कि स्कूल की क्या तरक्की है, मीरवाला आता है, और 2005 के शुरू में मिसिज़ ह्यूबर भी यह दूरी तय करके, रिपोर्टरों के एक जत्थे के साथ, अपने हाथों से मुझे 22,00,000 रुपये का एक चेक देने के लिए गाँव आती हैं, जो रकम स्कूल बनाने के लिए उनके मुल्क की तरफ़ से दिया गया चन्दा है।

यह बीबी मेरी हिम्मत के लिए, बराबरी और औरतों के हकों की हिमायत में लड़ने के लिए, अपनी ज़िन्दगी को इन्साफ़ की ही नहीं, तालीम की ख़ातिर लगाने की इच्छा के लिए मुझे बधाई देती है।

मैं उन पैसों से इमारत बनवाना शुरू करती हूँ जो मुझे पहले ही मिल गये थे - पाकिस्तानी सरकार से पाँच लाख रुपये, जो अमरीका से निजी चन्दे के तौर पर आये थे। आख़िरकार, मेरे शागिर्द अब खुले में नहीं, बल्कि एक सचमुच की स्कूली इमारत में पढ़ते हैं। कनेडियाई अन्तर्राष्ट्रीय विकास एजेन्सी - सी.आई.डी.ए. - से मिले चन्दे से साल भर के लिए पाँच टीचरों की तन्ख़ाहों, प्रिन्सिपल के दफ़्तर और एक छोटे-से पुस्तकालय, और लड़कियों के सेक्शन से अलग लड़कों के लिए दो कमरों को बनाने का इन्तज़ाम किया गया। पैसे बचाने के लिए मैंने लकड़ी ख़रीदी और एक बढ़ई को कुर्सी-मेज़ें बनाने के लिए दिहाड़ी पर रखा। फिर मैंने एक अस्तबल बनवाना शुरू किया जहाँ बकरियाँ और गाय-बैल पाल कर हमें चन्दे से आज़ाद लगातार आमदनी का पक्का सहारा हो जायेगा, क्योंकि विदेशी मदद तो हमेशा-हमेशा चलती नहीं। अभी से मेरे पास चालीस-पैंतालीस के बीच लड़कियाँ हैं, और लड़के-लड़कियों, दोनों के लिए पढ़ाई मुफ़्त है।

2005 के आख़िर में, मैं नतीजों पर गर्व कर सकती हूँ : एक सौ साठ लड़के और दो सौ से ज़्यादा लड़कियाँ स्कूल आती हैं। इतनी सारी लड़कियाँ... मैं जीत गयी।

लेकिन मुझे अब भी उनके माँ-बाप को राज़ी करना है कि वो उन्हें बाकायदगी से स्कूल आने दें। अक्सर ही, वो अपनी लड़कियों को घरेलू काम-काज में लगा लेते हैं, ख़ास तौर पर जो थोड़ी बड़ी होती हैं। फिर हमें हाज़िरी का इनाम देने का ख़याल आता है, जो साल के आख़िर में उस लड़के या लड़की को दिया जायेगा जो स्कूल में एक दिन को भी ग़ैर-हाज़िर नहीं रहा या रही होगी। लड़कियों के लिए एक बकरी, लड़कों के लिए एक साइकिल।

तो अब मेरे पास एक छोटी-सी "जायदाद" है, मेरे माँ-बाप के पुराने मकान के इर्द-गिर्द, जहाँ मैं पैदा हुई थी और जहाँ अब भी रहती हूँ। ज़नाना हिस्से के पीछे एक बड़ा-सा अहाता है, और मैंने एक खुले खेल के मैदान के साथ लड़कियों की क्लासों के लिए चार कमरे भी जोड़ दिये हैं। स्कूल में लड़कियों की पाँच टीचरें हैं, जिनका ख़र्चा बाहर के चन्दे से दिया जाता है, और लड़कों के लिए एक मास्टर, जिसकी तन्ख़ाह सरकार देती है। किसी रोज़ शायद, सरकार ज़नाना टीचरों की भी तन्ख़ाहें देगी। उम्मीद तो हमेशा की ही जा सकती है।

हमारे पास एक बड़ा-सा दफ़्तर है, साथ ही एक छोटा मगर काम-लायक पुस्तकालय, जहाँ मैं ज़रूरी फ़ाइलें, पढ़ाई जाने वाली किताबें और हाज़िरी का रजिस्टर रखती हूँ।

बाहर सबके इस्तेमाल के लिए एक हैण्ड-पम्प और मर्दों की सण्डास है। अन्दर घरेलू इस्तेमाल के लिए एक और पम्प है, और एक चूल्हा। नसीम हमारी हेड मास्टरनी है और मुस्तफ़ा बलोच इन्तज़ाम करने और इमारत बनवाने के सिलसिले में हमारा तकनीकी सलाहकार, क्योंकि सी.आई.डी.ए. बीच-बीच में यह देखने के लिए जाँच-पड़ताल करती रहती है कि काम कैसा चल रहा है। हम ने काम-धाम शुरू कर दिया है। मैं अपने इलाके के अकेले लड़कियों के स्कूल की प्रिन्सिपल हूँ, जो खजूर के पेड़ों और गेहूँ और गन्ने के खेतों के बीच कायम है। गाँव का बीच का हिस्सा एक कच्चे रास्ते के आख़िर में है; अपने दफ़्तर के दरवाज़े से मैं मस्जिद को देख सकती हूँ, और बकरियों के बाड़े को पार करके घर के पिछवाड़े से मस्तोइयों की हवेली नज़र आती है। उनकी लड़कियाँ और लड़के बाकायदा स्कूल में बैठने के लिए आते हैं, और मुझे कोई सीधी धमकी नहीं मिली है। स्कूल में अमन-चैन है।

यहाँ पढ़ने वाले बच्चे कई कबीलों के हैं जिनमें ऊँची और नीची जातें शामिल हैं, लेकिन उस कच्ची उमर में बच्चे अच्छी तरह रल-मिल कर चलते हैं। ख़ास तौर पर लड़कियाँ - मैंने उनमें से किसी के भी मुँह से कभी कोई ओछी बात नहीं सुनी। लड़कों की क्लासें मेरी छोटी-सी जागीर से कुछ फ़ासले पर लगती हैं, ताकि रास्ते में आते-जाते वक्त लड़कियों का उनसे सामना न हो।

और हर रोज़, मैं लड़कियों को अपने सबक याद करते, दौड़ते, हँसते, खेल के मैदान में बातें करते सुनती हूँ। सारी आवाज़ें, मेरी उम्मीदों को सींचते हुए, मुझे तसल्ली देती हैं। मेरी ज़िन्दगी का अब कुछ मतलब है। इस स्कूल को बने रहना चाहिए, और मैं इसके लिए लड़ती रहूँगी। कुछ बरसों में, मुझे उम्मीद है, इन नन्ही-सी लड़कियों में पढ़ाई-लिखाई के बारे में इतने ख़याल आ जायेंगे कि अपनी ज़िन्दगियों को नयी रोशनी में देख सकें। क्योंकि उस ख़ौफ़नाक हमले के बाद भी, जिसने मेरे गाँव का नाम सारी दुनिया में फैला दिया, औरतों के ख़िलाफ़ ऐसी दरिन्दगी बन्द नहीं हुई है। पाकिस्तान में हर घण्टे एक औरत पर हमला होता है, वह पीटी जाती है, तेज़ाब से जलायी जाती है, या "इत्तफ़ाक से" रसोई की गैस का सिलिण्डर फटने के "हादसे" में मारी जाती है। पाकिस्तान में मानवाधिकार आयोग ने पिछले छै महीने के दौरान अकेले पंजाब में बलात्कार के डेढ़ सौ मामले दर्ज किये हैं। और मेरी उन औरतों से बाकायदा मुलाकात होती है, जो मदद के लिए मेरे पास आती हैं। नसीम उन्हें औरतों की सहायता के लिए बनी संस्थाओं से मदद माँगने के लिए कहती है और उन्हें कानूनी सलाह देती है, मिसाल के लिए, यह सिफ़ारिश करते हुए कि वो कभी गवाह के बिना किसी बयान पर दस्तख़त न करें।

नसीम मुझे उन कुछेक ताज़ातरीन ख़बरों से वाकिफ़ भी कराती रहती है जो अख़बारों में छपती हैं, क्योंकि मैं पढ़ना सीख रही हूँ, अपना नाम और छोटी-सी तकरीर लिख लेती हूँ, लेकिन नसीम मुझसे कहीं ज़्यादा तेज़ी से पढ़ती है।

"ज़ाफ़रान बीबी के साथ, जो छब्बीस साल की नौजवान औरत है, उसके देवर ने ज़बरदस्ती ज़िना किया और उसे बच्चा ठहर गया। उसने बच्चे को नामंज़ूर नहीं किया और 2002 में उसे संगसार करने की सज़ा सुनायी गयी, क्योंकि बच्चा ज़िना का सबूत था। बलात्कार करने वाला बिना सज़ा पाये खुल्लम-खुल्ला छूट गया। ज़ाफ़रान बीबी पाकिस्तान के उत्तर-पश्चिम में कोहाट में कैद है, जहाँ उसका शौहर बाकायदगी से जा कर उसको मिलता है और उसे रिहा करने की माँग करता है। उसे संगसार नहीं किया जायेगा, मगर उसके सामने कई साल जेल में बिताने का जोखिम है, जबकि उसके साथ ज़बरदस्ती ज़िना करने वाला कानूनन महफ़ूज़ है।"

"एक नौजवान औरत ने मुहब्बत में शादी की : दूसरे लफ़्जों में, जिस आदमी से वह प्यार करती थी, उससे शादी करने का ख़ुद फ़ैसला किया, अपने और अपने तयशुदा मँगेतर, दोनों के घरवालों की ख़्वाहिशों के ख़िलाफ़, जिन्होंने इस वजह से उसे "बदतहज़ीब" करार दिया। घरवालों के एक मेल-मिलाप के दौरान, लड़की के दो भाइयों ने ख़ानदान की इज़्ज़त में दाग़ लगाने की सज़ा देने के तौर पर उसके शौहर को कत्ल कर दिया।"

किसी जवान औरत को यह हक नहीं है कि वह मुहब्बत के बारे में सोचे, उस आदमी से शादी करे जिसे वह अपने शौहर के तौर पर पाना चाहेगी। रोशन ख़याल से

रोशन ख़याल घरों में भी यह औरतों का फ़र्ज़ है कि वो अपने माँ-बाप के चुनाव का मान रखें। और इसलिए क्या फ़र्क पड़ता है अगर यह चुनाव तब किया गया जब वो पैदा भी नहीं हुई थीं। हाल के बरसों में जिर्गो ने नौजवान औरतों को आज़ादी से शादी करने की कोशिश करने के लिए मुजरिम ठहराया है, इसके बावजूद कि हमारा कौमी इस्लामी कानून इसकी इजाज़त देता है। लेकिन अफ़सरशाही इन औरतों की हिफ़ाज़त करने की बजाय कबाइली कानून की तरफ़दारी करना पसन्द करती है। और एक "बेइज़्ज़त" ख़ानदान के लिए बस यह दावा करना काफ़ी है कि आज़ादी से चुने गये उस शौहर ने उनकी बेटी के साथ ज़बरदस्ती की है। मुहाजिर तबके का फ़हीमुद्दीन और मनज़ाई कबीले की हाजिरा ने शादी कर ली, लेकिन हाजिरा का बाप इस शादी के ख़िलाफ़ था, इसलिए उसने ज़िना-बिल-जब्र की एक शिकायत दर्ज करायी। नये-नये शादीशुदा जोड़े को गिरफ़्तार कर लिया गया, लेकिन अपने शौहर की सुनवाई के दौरान हाजिरा ने बयान दिया कि उसके साथ ज़बरदस्ती नहीं हुई थी और उसने अपनी रज़ामन्दी से शादी की थी। अदालत ने उसकी किस्मत का फ़ैसला करने के दौरान उसे औरतों की पनाहगाह में भेज दिया। ठीक उस दिन, जब उस जोड़े ने हैदराबाद की सुप्रीम कोर्ट में अपना मुकदमा जीता, जैसे ही वो अदालत से जा रहे थे, मर्दों के एक गिरोह ने, जिसमें लड़की का बाप, चाचा और भाई शामिल थे, उन पर हमला किया। उन दोनों ने रिक्शे में बैठ कर भागने की कोशिश की, लेकिन दोनों मार दिये गये।

मिली-जुली शादियाँ बिरले ही होती हैं, लेकिन नसीम ने मुझे एक ईसाई औरत के मामले के बारे में बताया, जिसने एक मुसलमान से शादी कर ली थी और फिर इस्लाम कबूल कर लिया था। उस आदमी से उसकी एक बच्ची भी थी - मारिया - जो बड़ी हो कर सत्रह साल की हो गयी थी। एक दिन रिश्ते का एक चाचा उनके घर आ कर बोला कि उसकी बीवी बीमार है और मारिया को बुलाने के लिए कहती रही है। लड़की ग़ायब हो गयी। उसकी माँ ने उसे खोजा लेकिन नाकाम रही। बाद में पता चला कि लड़की को बिना यह बताये कि उसे क्यों कैद किया गया है, महीनों तक एक कमरे में बन्द रखा गया था, जहाँ एक बूढ़ी औरत उसे खाना देती थी। आख़िरकार, कुछ हथियारबन्द लोग एक मुल्ला के साथ आये और उन्होंने उसे एक निकाहनामे और मज़हब तब्दील करने के बयान पर दस्तख़त करने को मजबूर किया। मारिया का नया नाम कुलसूम रखा गया, फिर उसे अपने "शौहर" के घर ले जाया गया जो एक इस्लामी दहशतगर्द था और जिसने उसे अग़वा करवाने के लिए बीस हज़ार रुपये ख़र्च किये थे। लड़की ने ख़ुद को एक नयी किस्म के कैदख़ाने में पाया, जहाँ घर की हर औरत उस पर नज़र रखती थी, साथ ही उसे ईसाई होने के सबब से बदसलूकी और बेइज़्ज़ती भी सहनी पड़ती थी।

बेचारी लड़की को एक बच्चा हुआ और उसने भागने की कोशिश की, लेकिन उसे पकड़ लिया गया और बुरी तरह मारा-पीटा गया। आख़िरकार, जब वह फिर बच्चे से हुई तो ग़लती से खुले छोड़ दिये गये एक दरवाज़े से वह चुपचाप बाहर आ गयी, और तीन साल की कैद के बाद निकल भागने और अपनी माँ के पास आसरा लेने में कामयाब हो गयी। लेकिन उसका शौहर एक असरदार आदमी था जिसने तलाक देने से इनकार कर दिया और अपने बच्चे की सुपुर्दगी का दावा किया। मारिया को छिप कर रहना पड़ा, क्योंकि उस वकील ने जो अलग-अलग मज़हबों की बीवियों और शौहरों के इस तरह के आपसी मुकदमों में माहिर था, इस मुकदमे को आगे लड़ने से इनकार कर दिया था। पीछे हटने से पहले उसने माँ-बेटी को ख़बरदार किया था : उस आदमी का ख़ानदान काफ़ी ताकतवर था, और दोनों औरतें ख़तरे में थीं। शौहर ने लड़की को अग़वा करके वापस लाने के लिए गुण्डों को पैसे भी दिये थे। वकील उसके लिए बस एक ही चीज़ कर सका था - उसे ऐसी जगह खोज कर देना जहाँ वह छिप सके।

मानवाधिकार आयोग की एक रिपोर्ट का दावा है कि पंजाब में 226 पाकिस्तानी लड़कियाँ, सब-की-सब नाबालिग़, इसी तरह के हालात में ज़बरदस्ती शादी के लिए अग़वा की गयी थीं। आम तौर पर, किसी लड़की के पहली बार इनकार करने के बाद, अर्ज़ी देने वाला ख़ानदान हर चीज़ को "कायदे से" बहाल करने का ज़िम्मा लेता है। चूँकि इनकार को ख़ानदान की इज़्ज़त पर हमला माना जाता है, जो अक्सर ही कातिलाना बदलों की शक्ल ले लेता है, दोनों तरफ़ के घरवाले मामले को तय करने के लिए जिर्गे से दरख़्वास्त करते हैं। और जब दोनों तरफ़ मौतें हुई हों तो सुलह-समझौते की कीमत का हिसाब रुपयों में, या किसी औरत के भुगतान में, या दोनों में होता है। नसीम कहती है कि हमारी अहमियत बकरियों से भी कम है - इससे भी बदतर, उन जूतियों से भी कम है जिन्हें पहनने के बाद जब एक मर्द फ़ैसला करता है कि वो घिस गयी हैं तो उन्हें फेंक कर दूसरी जूतियों से बदल लेता है।

मिसाल के लिए, कत्ल से जुड़े एक झगड़े को निपटाने के लिए एक जिर्गे ने छै और ग्यारह बरस की दो लड़कियाँ मारे गये लोगों के घरवालों को "निस्बत में देने" का फ़ैसला किया। बड़ी लड़की की शादी छियालीस साल के एक आदमी से कर दी गयी और छोटी को मारे गये आदमी के एक भाई से ब्याह दिया गया जो आठ साल का बच्चा था। और दोनों घरों ने यह सौदा मान लिया! उस बेवकूफ़ाना कत्ल को सुलझाने के लिए जो एक कुत्ते के भौंकने को ले कर पड़ोसियों के बीच शुरू हुए झगड़े का नतीजा था। जिर्गे के लोग आम तौर पर महसूस करते हैं कि किसी गाँव में ख़ून-ख़राबे को ठण्डा करने का सबसे अच्छा तरीका है एक या दो लड़कियों को शादी में दे देना, ताकि दुश्मनों के बीच रिश्ते कायम हो जायँ।

ख़ैर, जिर्गे का फ़ैसला मोल-भाव के नतीजे के सिवा और कुछ नहीं होता। ऐसी मजलिस सिर्फ़ सुलह-समझौता कराने का काम करती है, किसी झगड़े में शामिल सभी लोगों के बीच रज़ामन्दी कायम करने के लिए ही इकट्ठा होती है, इन्साफ़ देने-दिलाने की ख़ातिर नहीं। यह "आँख के बदले आँख" का निज़ाम है। अगर एक कबीले ने दो आदमी मार दिये हैं, तो दूसरे कबीले को भी ऐसा ही करने का अधिकार है। अगर एक औरत के साथ ज़बरदस्ती की गयी है तो उसके बाप या भाई को बदले में दूसरे घर की एक औरत के साथ ज़बरदस्ती करने का हक है।

ज़्यादातर झगड़े जिनमें मर्दों की इज़्ज़त का सवाल नहीं होता, पैसे ले-दे कर निपटा दिये जाते हैं - कत्ल भी। जो पुलिस और अदालतों को मुकदमों की एक बड़ी तादाद से राहत दे देता है। यह भी ग़ैर मामूली नहीं है - और शायद मैं इस बात का सबूत हूँ - कि किसी कबीले द्वारा हड़पी गयी ज़मीन को ले कर जो झगड़ा पहले कभी हुआ हो, वह दोबारा बड़े अजीबो-ग़रीब ढंग से इज़्ज़त के ख़िलाफ़ किये गये जुर्म की शक्ल में सामने आये, ऐसा जुर्म जिसे गाँव की पंचायत ज़्यादा आसानी से हाथ में ले सकती है, और जिसमें एक भी रुपया अदा करने की ज़रूरत नहीं पड़ती।

औरतों के लिए बड़ा मसला यह है कि कोई उन्हें किसी चीज़ की जानकारी नहीं देता। औरतें किसी बातचीत या बहस में हिस्सा नहीं लेतीं, क्योंकि गाँव की पंचायत में सिर्फ़ मर्द ही होते हैं। चाहे औरत झगड़े का मकसद हो या जुर्म का मुआवज़ा, उसे उसूलन किनारे कर दिया जाता है। एक दिन के बाद दूसरे दिन उसे बताया जाता है कि उसे फ़लाँ-फ़लाँ कुनबे को 'दे दिया गया है।' या, जैसा मेरे मामले में हुआ, उसे इस या उस दूसरे कुनबे से माफ़ी माँगनी होगी। जैसा नसीम कहती है, गाँव के लड़ाई-झगड़े और ड्रामे सचमुच की गाँठें हैं जिन्हें सुलझाते समय पंचायतें हमारे सरकारी कानूनों की, ख़ास तौर पर इन्सानी हकों से जुड़े कानूनों की कोई कदर या परवाह नहीं करतीं।

जनवरी 2005 में, जब मुझे मुल्तान की अदालत में अपनी अपील के फ़ैसले का इन्तज़ार करते हुए दो बरस हो गये थे, सभी अख़बारों में एक और घटना सुर्ख़ियों में छपी, और अख़बारों में लिखने वालों ने इस कहानी की तुलना मेरी कहानी से की, इसके बावजूद कि उनमें काफ़ी फ़र्क था। डॉ. शाज़िया ख़ालिद बत्तीस बरस की तहज़ीब याफ़्ता औरत जो शादीशुदा थी और माँ भी, बलूचिस्तान में एक सरकारी कम्पनी, पाकिस्तान पेट्रोलियम लिमिटेड के लिए बतौर डॉक्टर काम कर रही थी। 2 जनवरी को उसका शौहर मुल्क के बाहर गया हुआ था, इसलिए वो अपने घर में अकेली थी। घर चारदीवारी और पहरे वाला था, क्योंकि उस इलाके में पाकिस्तान पेट्रोलियम लिमिटेड के काम का दायरा एक दूर-दराज़ की कबाइली पट्टी में था।

अभी वो सोयी हुई थी कि एक आदमी उसके सोने के कमरे में घुसा और उसने उसके साथ बलात्कार किया।

आगे जो हुआ वो ख़ुद अपने लफ़्ज़ों में बताती है।

"जब वो मुझे मेरे बालों से झटके देते हुए इधर-से-उधर हिला रहा था, मैंने हाथ-पैर मारे, मैं चिल्लायी, पर कोई नहीं आया। मैंने जब टेलिफ़ोन पकड़ने की कोशिश की तो उसने रिसीवर से मेरे सिर पर चोट मारी और तार से मेरा गला घोंटने की कोशिश की। 'ख़ुदा के वास्ते,' मैंने उससे बिनती की, 'मैंने तुम्हें कभी नुकसान नहीं पहुँचाया - तुम मेरे साथ ऐसा क्यों कर रहे हो?' और उसने कहा, 'ख़ामोश रह। बाहर कोई मिट्टी का तेल का कनस्तर ले कर खड़ा है। अगर तू चुप नहीं रहेगी, वो आ कर तुझे ज़िन्दा जला देगा।'

"उसने मेरी इज़्ज़त लूटी, फिर मेरी आँखों पर मेरा दुपट्टा बाँधा, अपनी बन्दूक के कुन्दे से बार-बार मारा और फिर दोबारा मेरे साथ ज़बरदस्ती की। फिर उसने मुझ पर एक कम्बल डाल दिया, टेलिफ़ोन की तार से मेरी कलाइयाँ बाँध दीं, और कुछ देर टेलिविज़न देखता रहा - मैं अंग्रेज़ी में आती आवाज़ें सुन सकती थी।"

डॉ. ख़ालिद कुछ देर के लिए बेहोश हो गयी, फिर उसने किसी तरह ख़ुद को आज़ाद किया और भाग कर एक नर्स के घर में आसरा लिया।

"मैं बोल नहीं पा रही थी - वो फ़ौरन ही समझ गयी। पाकिस्तान पेट्रोलियम लिमिटेड से कुछ डॉक्टर आ पहुँचे। मैं उम्मीद करती थी कि वो मेरे ज़ख़्मों की देख-भाल करेंगे, लेकिन इसके बिलकुल उलट, उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया। उन्होंने मुझे कुछ नींद की गोलियाँ दीं, चोरी-छिपे मुझे हवाई जहाज़ से कराची के एक दिमाग़ी मरीज़ों के हस्पताल में ले गये, और मुझे सलाह दी कि मैं अपने घरवालों को ख़बर करने की कोशिश न करूँ। तो भी मैं अपने भाई को ख़बर करने में कामयाब रही, और मैंने 9 जनवरी को पुलिस को अपना बयान दिया। फ़ौजी इन्फ़र्मेशन सर्विस ने मुझसे वादा किया कि मुजरिम अड़तालीस घण्टों के भीतर गिरफ़्तार कर लिया जायेगा।

"मुझे और मेरे शौहर को एक अलग मकान में रख दिया गया, जहाँ से हमें निकलने की मनाही थी। पाकिस्तान के राष्ट्रपति ने टेलिविज़न पर कहा कि मेरी ज़िन्दगी ख़तरे में थी। सबसे ख़राब यह था कि मेरे शौहर के अपने दादा ने ऐलान किया कि मैं *कारी* थी - ख़ानदान पर एक धब्बा; कि मेरे शौहर को मुझे तलाक दे देना चाहिए, और मुझे ख़ानदान से बाहर निकाल देना चाहिए। मुझे मार दिये जाने का डर था। मैंने ख़ुदकुशी करने की कोशिश की, लेकिन मेरे शौहर और मेरे बेटे ने मुझे ऐसा करने से रोक दिया। फिर मुझे कड़ाई से सलाह दी गयी कि मैं एक बयान पर दस्तख़त करूँ जिसमें कहा गया हो कि मुझे सरकारी अफ़सरों से मदद मिली थी और यह कि

मैंने इस मामले को और आगे न बढ़ाने का फ़ैसला किया था। मुझे बताया गया था कि अगर मैंने दस्तख़त नहीं किये तो शायद मुझे और मेरे शौहर को मार डाला जायेगा; कि बेहतर होगा, अगर मैं पाकिस्तान पेट्रोलियम लिमिटेड से कोई सफ़ाई माँगे बग़ैर मुल्क छोड़ कर चली जाऊँ, क्योंकि ऐसी माँग तब हमारे लिए भारी मुश्किलें खड़ी कर देगी। मुझसे यह भी ज़ोरदार ताकीद की गयी कि मैं किसी इन्सान परस्त तंज़ीम या मानवाधिकार संगठन से बात न करूँ।"

इस मामले ने बलूचिस्तान में ख़ासी हलचल पैदा की थी, जहाँ कर्मचारी नियमित रूप से अपने इलाके में गैस निकालने की कार्रवाई के प्रति अपना विरोध प्रकट करते रहते हैं। जब एक अफ़वाह फैली कि डॉ. ख़ालिद का हमलावर फ़ौज में था तो उस क्षेत्र में एक दस्ते पर हमला हुआ। माना जाता है कि लगभग पन्द्रह आदमी मारे गये और गैस कम्पनी के कुछ साज़-सामान को नुकसान भी पहुँचा।

आज, डॉ. ख़ालिद इंग्लैण्ड में कहीं जलावतनी की ज़िन्दगी गुज़ार रही है, कट्टर पाकिस्तानी समुदाय के बीच, जहाँ उसे चैन का एहसास नहीं है। उसका पति उसका साथ निभा रहा है, लेकिन उनका सबसे बड़ा दुख यह है कि उन्हें अपने बेटे को पाकिस्तान में ही छोड़ कर आना पड़ा : अफ़सर उसे यह इजाज़त देने को तैयार नहीं हुए कि वह उनके साथ जाये। उन्होंने अपनी ज़िन्दगी का तौर-तरीका और अपना मुल्क खो दिया है, और फ़िलहाल उनकी यही एक उम्मीद है कि उन्हें कैनेडा जा बसने की इजाज़त मिल जायेगी जहाँ उनके कुछ रिश्तेदार हैं।

□

नसीम इस मामले पर अपनी हस्ब-मामूल साफ़गोई से राय ज़ाहिर करती है।

"उसकी समाजी हैसियत चाहे जो भी हो, वह पढ़ी-लिखी हो या अनपढ़ हो, अमीर हो या ग़रीब, कोई भी औरत जो मार-कुटाई और ज़ोर-ज़बरदस्ती का शिकार होती है, वह धौंस और धमकी का भी शिकार बनती है। तुम्हारे साथ था, 'अपने अँगूठे का निशान यहाँ लगा दे, हम वो लिख देंगे जिसकी ज़रूरत है।' उसके मामले में था, 'यहाँ दस्तख़त करो, वरना तुम दोनों मरोगे!' वह किसान हो या फ़ौजी, मर्द जब चाहता है, जैसे चाहता है, ज़बरदस्ती ज़िना करता है। वह जानता है कि ज़्यादातर मौकों पर उसे छोड़ दिया जायेगा, क्योंकि उसे एक पूरे-के-पूरे निज़ाम की हिफ़ाज़त हासिल है - वह चाहे सियासी हो या कबाइली, मज़हबी हो या फ़ौजी। हम औरतें तो अपने जायज़ हकों को इस्तेमाल करने के करीब भी नहीं पहुँची हैं। इसके उलट! औरतों के हकों के लिए आवाज़ बुलन्द करने वालियों की इज़्ज़त नहीं की जाती - बुरी-से-बुरी हालत में लोग हमें ख़तरनाक इंकलाबी समझते हैं और अच्छी-से-अच्छी हालत में मर्दों की दुनिया में गड़बड़ी और

मुसीबत फैलाने वाली। तुम? वो औरतों के हकों के लिए **आवाज़ बुलन्द** करने वालों की तरफ़ मुड़ने के लिए तुम्हारी लानत-सलामत करते हैं - कुछ अख़बार यह भी कहते हैं कि तुम रिपोर्टरों और ग़ैर सरकारी संगठनों के हाथों में खेल रही हो। मानो तुम में यह समझने के लिए इतनी अक्ल नहीं है कि इन्साफ़ हासिल करने का एक ही रास्ता है - उसके लिए आवाज़ बुलन्द करना, ऊँची और देर तलक।''

❒

मैं ज़िन्दा बच निकलने वाली और एक सरगर्म कार्यकर्ता हूँ। एक शबीह। एक निशानी, उस कशमकश की जो मेरे मुल्क की औरतें कर रही हैं।

लाहौर की आर्ट्स अकैडेमी ने, ऐसा लगता है, मेरी बदनसीब कहानी से प्रेरित एक नाटक खेला है। *मेरा क्या कसूर?* नाटक की कहानी जो मेरे साथ हुआ, उस पर नहीं आधारित है, क्योंकि कहानी शुरू होती है जब एक ज़मींदार की बेटी एक पढ़े-लिखे नौजवान से मुहब्बत करने लगती है जो - बदकिस्मती से - एक किसान का बेटा है। उन्हें एक-दूसरे का हाथ पकड़े देख लिया जाता है, लिहाज़ा ज़मींदार की इज़्ज़त बहाल करने के इरादे से जिर्गे का फ़ैसला यह फ़रमान जारी करता है कि किसान नौजवान की बहन ज़मींदार के बेटे को दे दी जायेगी। किसान की बेटी ख़ुदकुशी कर लेती है और उसकी माँ भी। ज़मींदार का लड़का पागल हो जाता है, और वह भी ख़ुदकुशी कर लेता है।

स्टेज पर मरने से पहले, वह जवान अदाकारा जो 'मेरा' रोल अदा करती है - उस औरत का जिसका 'निपटारा किया गया' - हैरत से सोचती है कि क्या सचमुच उसके मुल्क में ग़रीब और लड़की पैदा होना एक गुनाह है।

''क्या गुनहगारों को गिरफ्तार करने से मेरी इज़्ज़त मुझे वापस मिल जायेगी?'' वह चिल्लाती है ''मेरे जैसी वहाँ और कितनी लड़कियाँ हैं? ख़ुदकुशी से ज़्यादा - इन्साफ़ की ख़्वाहिश ने मुझे मेरी इज़्ज़त लौटायी है। क्योंकि एक शख़्स को किसी दूसरे के जुर्म के लिए कभी गुनहगार नहीं महसूस करना चाहिए।''

बदकिस्मती से, बहुत कम औरतों की ऐसी तकदीर होती है कि वो मीडिया और मानवाधिकार संगठनों को जोश दिलाने में कामयाब हों।

❒

अक्तूबर 2004 में शहरी समाज के सैकड़ों नुमाइन्दों और कार्यकर्ताओं ने इकट्ठा हो कर इज़्ज़त के नाम पर होने वाले जुर्मों के सिलसिले में बेहतर कानून की माँग करने के लिए एक प्रदर्शन किया। सरकार एक अर्से से वादा करती रही थी कि वह इज़्ज़त के नाम पर होने वाले जुर्मों को ग़ैर कानूनी करार देगी, और कुछ भी नहीं हुआ था। उन्हें बस इतना

करना था कि कम-से-कम उन कानूनों में काट-छाँट कर दें जो मुजरिमों को इजाज़त देते थे कि वो अपने शिकारों के घरवालों से मोल-भाव कर सकें, और यों कानूनी पाबन्दियों से बच सकें; और कबाइली पंचायतों के सामने होने वाली सभी सुनवाइयों को ग़ैर-कानूनी करार दें। ऐसा ख़याल है कि कुछ सूबाई सरकारें निजी इन्साफ़ के इस निज़ाम को पाबन्दियों और कायदों के दायरे में लाने के लिए कानून तैयार कर रही हैं। बहरहाल, ताकत अब भी जिर्गों के हाथ में है, और हज़ारों औरतें इस कबाइली निज़ाम में अब भी बलात्कार या कत्ल की शिकार हैं।

❒

मेरे मामले में अपील की कार्रवाई एक लम्बा अर्सा ले रही है। मौत की शुरुआती सज़ा के बाद से दो साल बीत भी चुके हैं। अगर कानून बदले नहीं हैं, और अगर हाईकोर्ट बुनियादी फ़ैसलों की ताईद नहीं करती, और अगर उन आठ मुजरिमों को जिन्हें पहले ही छोड़ दिया गया था, इस बार सज़ा नहीं दी जाती, जैसी कि मैंने अपनी अपील में माँग की थी - तो फिर क्यों न सबको रिहा कर दिया जाय और मुझे मस्तोइयों के रहम पर अपने गाँव वापस भेज दिया जाय? मुझमें इसके बारे में सोचने की हिम्मत नहीं है। नसीम आश्वस्त है। वह पूरी तरह इस लड़ाई में मेरे साथ है। और मैं जानती हूँ, वह उतने ही ख़तरे उठा रही है जितने मैं। वह आशावादी है : उसे मेरी मुकाबला करने की काबलियत में यकीन है। वह जानती है कि मैं आख़िर तक डटी रहूँगी, कि मैं 'जो होना है वह होगा' में यकीन रखते हुए - जो एक तरह से मेरी ढाल भी है - सारी धमकियों को सहूँगी। एक अड़ियलपने के साथ जो दूसरों को ठण्डा लग सकता है, लेकिन जो शुरू ही से मेरे अन्दर खौलता रहा है।

मैं अक्सर कहती हूँ कि अगर मर्दों का इन्साफ़ उन लोगों को सज़ा नहीं देता जिन्होंने मेरे साथ ''वो'' किया तो देर-सबेर ख़ुदा इसे अपने हाथ में लेगा। लेकिन मैं पसन्द करूँगी कि वह इन्साफ़ मुझे सरकारी तौर पर मिले। सारी दुनिया के सामने, अगर यही होना है तो।

बेइज़्ज़ती

1 मार्च 2005 को एक बार फिर मैं अदालत में पेश होती हूँ। इस बार यह मुल्तान में लाहौर हाई कोर्ट की बेंच है। मैं अकेली नहीं हूँ : ग़ैर सरकारी संगठन और देशी-विदेशी अख़बार वाले इस फ़ैसले का इन्तज़ार कर रहे हैं। अपनी तरफ़ लहराये गये उन तमाम माइक्रोफ़ोनों के सामने मैंने यही ऐलान किया है कि मुझे सिर्फ़ इन्साफ़ की उम्मीद है, लेकिन मैं यह भी चाहती हूँ कि यह इन्साफ़ "पूरमपूर" हो।

मस्तोई कबीला अब भी हर चीज़ से इनकार कर रहा है। और यहाँ इकट्ठा हम सब - एन.जी.ओ. के नुमाइन्दे, स्थानीय और विदेशी अख़बारों के लोग - यह जानते हैं कि कितनी बाकायदगी से हमारी अदालतों में ज़िनाकारों को रिहा कर दिया जाता है। मेरे मामले में पहला फ़ैसला एक जीत थी, सिवा उन आठ मस्तोई मर्दों को बरी किये जाने के, जिन्हें सज़ा दिलवाने की कोशिश मैं अब भी कर रही हूँ। मैं वहाँ बैठ कर, जज को एक कभी न ख़त्म होने वाला मज़मून पढ़ते सुनती हूँ, लेकिन चूँकि वह अंग्रेज़ी में है, मैं एक लफ़्ज़ भी नहीं समझ सकती।

❐

31 अगस्त 2002 को डेरा ग़ाज़ी ख़ाँ की आतंकवाद-विरोधी अदालत के फ़ैसले के मुताबिक इन छै अपीलकर्ताओं को, जिनके नाम नीचे दिये जा रहे हैं, दोषी पाया गया था और निम्नलिखित सज़ाएँ सुनायी गयी थीं...

छै आदमियों को मौत की सज़ा दी गयी थी...

आठ अन्य कैदियों को उन सभी आरोपों से बरी कर दिया गया था जो उनके ख़िलाफ़ लगाये गये थे।

नसीम और मैं बीच-बीच में फुसफुसा कर एक-दूसरे से बात करते हैं। और इस बीच, जब मैं उन अबूझ शब्दों के उतार-चढ़ाव को सुन रही हूँ, आहिस्ता-आहिस्ता मगर

पक्के तौर पर, एक मनमाना इन्साफ़ शक्ल अख़्तियार कर रहा है।

सोमवार इसी तरह गुज़रता है और मंगलवार 2 मार्च का दिन भी। अब मेरे वकील के बोलने की बारी है। मैं इतना थकी हुई हूँ कि जब-तब ऊँघ जाती हूँ। मुझे अक्सर ऐसा महसूस होता है मानो इस बड़े-से कमरे में चल रही कार्रवाई मेरी ग़ैर मौजूदगी में हो रही है।

काश, मैं समझ सकती कि क्या कहा जा रहा है! लेकिन मुझे शाम तक इन्तज़ार करना पड़ता है, जब मेरा वकील बचाव पक्ष की तरफ़ से पेश की गयी ख़ास-ख़ास दलीलों का निचोड़ बताता है, जिसके मुताबिक लगता है कि...

"मेरा बयान बेमेल बातों से भरा हुआ है, और उसकी ताईद में इतने सबूत नहीं हैं कि साबित हो सके कि कोई सामूहिक बलात्कार हुआ था।"

इसके बावजूद कि कम-से-कम आधा गाँव वहाँ इसका गवाह था।

"शिकायत इन घटनाओं के फ़ौरन बाद ही दाख़िल नहीं की गयी थी, और इस देरी के लिए कोई वाजिब सफ़ाई नहीं दी गयी थी।"

एक औरत ही समझ सकती है कि चार मर्दों के बलात्कार की शिकार औरत को जिस्मानी और दिमाग़ी तौर पर कितना नुकसान पहुँचा होता है। लिहाज़ा, इन सारे मर्दों को यह ज़्यादा सही लगता अगर मैंने फ़ौरन ख़ुदकुशी कर ली होती?

"मेरा बयान काबिले-एतराज़ तरीके से दर्ज किया गया था। एक पुलिसवाले ने 30 जून 2002 को एक बयान लिखा, जो सरकारी वकील को दिये गये बयान से मेल नहीं खाता।"

मेरा बयान, ज़ाहिरा तौर पर, उस बयान से मेल नहीं खा सकता था जो पुलिसवाले ने पेश किया था।

इसके बाद बचाव पक्ष की तरफ से पेश किया गया इनकारों का एक पूरा सिलसिला है, सारे-का-सारा यह दिखाने के लिए बुना गया कि कोई भी चीज़ मुल्ज़िमों की ज़िम्मेदारी को साबित नहीं कर सकती। यह सारा "किस्सा" फ़र्ज़ी तौर पर एक रिपोर्टर ने, जो इत्तफ़ाक से वहाँ था, सनसनीख़ेज़ सुर्ख़ियाँ पैदा करने के लिए गढ़ा है। इसके बाद अख़बारों ने मामले पर झपट्टा मारा और उसे पूरी दुनिया में फैला दिया था, जबकि यह कथित जुर्म हुआ ही नहीं था।

मुझे बाहरी मुल्कों से पैसे मिले हैं - और बैंक में मेरा खाता है।

मैंने ये सारी दलीलें पहले भी सुनी हैं, ख़ास तौर पर आख़िरी वाली। उस पैसे से लड़कियों के लिए - और लड़कों के लिए भी - एक स्कूल कायम करने की मेरी इच्छा में मेरे दुश्मनों को कोई दिलचस्पी नहीं है। मुल्क के अख़बारों में छपी किसी टिप्पणी ने दलील दी है कि पाकिस्तान की औरतों का सिर्फ़ एक फ़र्ज़ है, अपने शौहरों की ख़िदमत

करना, और एक लड़की को बस उतनी तालीम दी जानी चाहिए जो उसे अपनी माँ से मिलती है, क्योंकि कुछ ख़ास मज़हबी सबक छोड़ कर उसके सीखने के लिए और कुछ नहीं है। सिवा ताबेदारी की ख़ामोशी के।

ऐसा लगता है कि इस अदालत में अन्दर-अन्दर शक की एक धारा बह रही है कि मैं ख़ामोशी की इस पाबन्दी को न मानने की गुनहगार हूँ।

मैंने अक्सर कहा है, और अख़बार वालों के सामने दुहराया है कि मैं अपने मज़हबी यकीन के ज़ोर पर, कुरान और सुन्नत के लिए अपनी इज़्ज़त के बल पर, लड़ रही हूँ। कुरान से कबाइली इन्साफ़ के इस तरीके का कुछ लेना-देना नहीं है, जो एक गाँव को अपने काबू में रखने की ख़ातिर लोगों के साथ बलात्कार करने और उन्हें दहशत में रखने पर टिका हुआ है। मेरे मुल्क पर, बदकिस्मती से, अब भी बर्बर परम्पराओं का राज है, जिन्हें सरकार और हुकूमत लोगों के दिलो-दिमाग़ से हटा नहीं पायी है। जब जजों को हमारे इस्लामी लोकतन्त्र के सरकारी कानून - जो अपने बाशिन्दों के बीच सच्ची बराबरी की तरफ़ आहिस्ता-आहिस्ता बढ़ रहा है - और हुदूद के कानूनों के बीच चुनना होता है - जो ज़िना के ख़िलाफ़ पाबन्दियों को और मज़बूत करते हैं और लाज़िमी तौर पर औरतों को ही सज़ा के काबिल ठहराते हैं - तो ये जज कई बार अपनी निजी धारणाओं से प्रभावित हो सकते हैं।

❐

तीन मार्च को आख़िरकार फ़ैसला सुनाया जाता है। आतंकवाद विरोधी अदालत के फ़ैसले के ख़िलाफ़, और सब को हैरान करते हुए, लाहौर हाईकोर्ट पाँच मुल्ज़िमों को बरी करते हुए यह हुक्म देती है कि उन्हें रिहा कर दिया जाय। सिर्फ़ एक मुजरिम जेल में रहता है, उमर कैद की सज़ा पा कर। यह एक तबाह कर देने वाला धक्का है।

भीड़ अदालत से बाहर आने से इनकार करते हुए गुस्से से चीख़ने-चिल्लाने लगती है। बेंचों पर बैठे अख़बारों के रिपोर्टर इधर-उधर मुड़ने लगते हैं। जो हुआ है, उसके बारे में हर कोई बात कर रहा है।

"कौम के लिए यह बड़ा उदासी भरा दिन है..."

"सारी औरतों के लिए यह एक ज़लालत है..."

"एक बार फिर कानून को किनारे धकेल दिया गया है..."

❐

मुझ पर जैसे बिजली गिरी हो। मैं रिपोर्टरों के सामने काँप रही हूँ। क्या कह सकती हूँ मैं? क्या कर सकती हूँ? मेरा वकील इस फ़ैसले पर अपील दायर करेगा, लेकिन इस

बीच? "वो" घर जा रहे होंगे, अपने खेतों पर, मेरे स्कूल और मेरे घर से सौ गज़ की दूरी पर। मेरे घरवालों पर ख़तरा है और आज के दिन से मुझे भी जान का खटका है। मैं इन्साफ़ चाहती थी, मैं चाहती थी उन्हें फाँसी पर चढ़ा दिया जाय - मुझे ऐसा कहने में डर नहीं लगा था - या कम-से-कम उनकी बाकी ज़िन्दगी के लिए जेल में कैद रखा जाय। मैं सिर्फ़ अपने लिए नहीं, बल्कि हर उस औरत के लिए लड़ रही थी, जिसके साथ एक ऐसे कानून ने हिकारत का बरताव या किनाराकशी की है जो बलात्कार को साबित करने के लिए चार चश्मदीद गवाह माँगता है! मानो बलात्कार करने वाले सरे आम ऐसा करते हैं। वो सारी शहादत और गवाहियाँ जो मेरी ताईद करती हैं, बाहर फेंक दी गयी हैं, *जबकि एक पूरे-का-पूरा गाँव* जानता है कि क्या हुआ! यह अदालत बचाव पक्ष की दलीलों को, लफ़्ज़-दर-लफ़्ज़ कबूल करके, और मुझे अपराधी बना कर - 'जाँच में गड़बड़ घोटाला हुआ है, बलात्कार साबित नहीं हुआ' - मस्तोइयों को उनकी नाम-निहाद इज़्ज़त बहाल करने की कोशिश कर रही है। तो यह है, मुख़्तार, तुझे चुप कराना ज़रूरी था, और ताकतवर मस्तोई कबीले ने तुझे हरा दिया है। मेरे साथ फिर से बलात्कार हो रहा है।

यह चीज़ मुझे गुस्से और तकलीफ़ से रोने को मजबूर कर देती है। बहरहाल, आम नाराज़गी और हाय-तोबा, और प्रदर्शन करने वालों और अख़बार नवीसों की मौजूदगी देख कर, जज को मजबूरन कुछ घण्टे बाद एक बयान जारी करना पड़ता है।

"मैंने फ़ैसला सुनाया है, लेकिन उसके अमल का हुक्म नहीं दिया। कैदी अभी रिहा नहीं किये गये हैं।"

फ़ैसले का ऐलान 3 मार्च, वृहस्पतिवार को हुआ था। शुक्रवार इबादत और नमाज़ पढ़ने का दिन है। इसलिए इससे पहले कि जज को फ़ैसला टाइप कराने और उसकी कापियाँ ज़िलेदार और दूसरे पुलिस अफ़सरों को भेजने का वक्त मिले, नसीम के मुताबिक, हमारे पास अब भी कुछ दिन हैं जिनमें हम कदम उठा सकते हैं। उसने हार नहीं मानी है और न ही उन सारे संगठनों के कार्यकर्ताओं ने जो सुनवाई के दौरान मौजूद रहे।

एक बार सदमा गुज़र जाता है तो मैं मैदान छोड़ने से इनकार कर देती हूँ। हमारे इर्द-गिर्द सब तरफ़ औरतें उसी गुस्से और शर्मिन्दगी से चिल्ला रही हैं। एन.जी.ओ. और मानवाधिकार संगठन फ़ौरन लामबन्दी शुरू कर देते हैं : सूबे में उफान है। 5 मार्च को मैं एक प्रेस कॉन्फ़रेंस करती हूँ, एक थका देने वाला तजुर्बा। हाँ, मैं अपील करूँगी। नहीं, मैं जलावतनी में नहीं जाऊँगी। मैं अपने घर में, अपने गाँव में, रहना चाहती हूँ। यह मेरा मुल्क है, यह ज़मीन मेरी ज़मीन है, और अगर मुझे करना पड़ा तो मैं ख़ुद सदर मुशर्रफ़ से अपील करूँगी।

अगले दिन मैं वापस घर आ जाती हूँ, और 7 मार्च को मैं इस नाइन्साफ़ी-भरे फ़ैसले के ख़िलाफ़ एतराज़ करने वाले एक बड़े प्रदर्शन में हिस्सा लेने के लिए मुलतान जाती

हूँ। वहाँ तीन हज़ार औरतें हैं जिनकी हिमायत औरतों के हकों के लिए काम करने वाली संस्थाएँ कर रही हैं। मैं जुलूस में शामिल होती हूँ - चारों तरफ़ बैनरों से घिरी हुई जो मेरे नाम पर इन्साफ़, और हुदूद के उन बदनाम कानूनों में सुधार की माँग कर रहे हैं। जोश और जज़्बे से भरी इस भीड़ में मैं ख़ामोशी से चलती हूँ और ये ज़िल्लत पैदा करने वाले शब्द मेरे दिमाग़ में चक्कर लगाते हैं : "वो उन्हें रिहा करने वाले हैं, वो उन्हें रिहा करने वाले हैं... मगर कब?"

इस बीच, जुलूस को आयोजित करने वाले लोग माइक्रोफ़ोनों और फ़ोटोग्राफ़रों की मौजूदगी का फ़ायदा उठा कर अपने विरोध को और दूर तक फैलाने की कोशिश करते हैं।

"सरकार अब भी औरतों के हकों के बारे में ख़ुद अपनी लफ़्फ़ाज़ी में फँसी है," एक मानवाधिकार संगठन की जुझारू कार्यकर्ता कहती है। "डॉ. शाज़िया ख़ालिद को मुल्क छोड़ने के लिए मजबूर करके, और मुख़्तार माई के हमलावरों को रिहा करके इन्हें गुनहगार ठहराने का मतलब है कि इन्साफ़ हासिल करने से पहले अभी हमें एक लम्बा रास्ता तय करना है।"

❐

जिन औरतों ने ए.जी.एच.एस. कायम किया था - वह संगठन जो 1980 से मानवाधिकारों और पाकिस्तान में लोकतन्त्र की तरक्की के लिए संघर्ष करता रहता है - वो अब सामने हैं, और मेरे जैसे मुश्किल मामलों से वाकिफ़ हैं। और वो सरकार के किये-कराये के बारे में और भी ज़्यादा तल्ख़ हैं। संस्थापकों में से एक, हिना जिलानी, लाहौर और इस्लामाबाद, दोनों जगह हाईकोर्ट में मुकदमों पर बहस करती है।

"अगर औरतों की हालत थोड़ी सुधर रही है, तो उसका हुकूमत से कुछ लेना-देना नहीं है। किसी भी तरक्की का एक बड़ा हिस्सा अवाम और औरतों के हकों की ताईद करने वाली तंज़ीमों की देन है। ऐसे लोगों ने अक्सर अपनी मंज़िलों को हासिल करने के लिए अपनी जानें भी जोखिम में डाली हैं। बरसों से हम गम्भीर धमकियों और लगातार दबाव का निशाना बने रहे हैं। ख़ास तौर पर यह हुकूमत दुनिया के लोगों के सामने मुल्क की एक तरक्कीपसन्द और आज़ाद ख़याल तस्वीर पेश करने के लिए औरतों के हकों के उसूल को इस्तेमाल करती है। सब ढकोसला है। डॉ. शाज़िया ख़ालिद का बलात्कार और मुख़्तार माई के मुकदमे का फ़ैसला औरतों के ख़िलाफ़ होने वाले ज़ुल्म को ख़त्म करने में इस सरकार की बेदिली को उजागर करता है। राष्ट्रपति मुल्ज़िमों को बचाते हैं और जुर्म की जाँच-पड़ताल पर असर डालते हैं। हुकूमत ने अपनी विश्वसनीयता खो दी है।"

❐

"औरतों की हालत में भारी गिरावट आयी है, और यह लगातार ख़राब होती जायेगी," औरतों के लिए शिक्षा और कानूनी मदद का काम करने वाली "औरत फ़ाउण्डेशन" की निदेशक ज़ोर दे कर कहती हैं। "हमें एक लम्बा रास्ता तय करना है, भले ही इन्सानी हकों के आन्दोलनों ने पिछली चौथाई सदी के दौरान तरक्की की है। सरकार हमें बताती है कि औरतें संसद का 33% हिस्सा हैं, लेकिन यह पूरी तरह जनता की तरफ़ से डाले जा रहे लगातार दबाव की वजह से है। मुख़्तार माई का फ़ैसला इस बात की पक्की निशानी है कि औरतों के ख़िलाफ़ ज़ुल्म को रोकने के लिए कुछ भी नहीं किया गया है, और डॉ. शाज़िया ख़ालिद का बलात्कार इन्सानी हकों के ख़िलाफ़ एक जुर्म है, उस बदनामी का एक और नमूना जो दुनिया की नज़रों में हमारे मुल्क ने ख़ुद अपने ऊपर बुला ली है। मुख़्तार माई का मामला आने वाले वक्त में बलात्कार करने वालों को उकसावा ही दे सकता है। हाल में, इस मुल्क में इज़्ज़त के नाम पर किये गये जुर्मों के ख़िलाफ़ एक प्रस्तावित कानून की शिकस्त का मतलब है कि इससे पहले कि हम समाजी इन्साफ़ हासिल करने की उम्मीद कर सकें, हमें अभी लम्बे समय तक चलना होगा - जैसा कि हम आज कर रहे हैं।"

❐

पाकिस्तान के मानवाधिकार आयोग की कामिला हयात भी पत्रकारों से मुख़ातिब होती हैं।

"इसके बावजूद कि ज़ोर-ज़ुल्म कम नहीं हुआ है, औरतें अब यह जानने की कोशिश कर रही हैं कि घरेलू हिंसा के हालात में उनके हक क्या हैं, जो हिंसा कि ग़रीबी, तालीम की कमी, और दूसरे बहुत-से नकारात्मक सामाजिक कारणों से बढ़ रही है, मिसाल के लिए कबाइली फ़ैसले और कई बरसों से लागू नारीवाद विरोधी कानून। इन दो जुझारू नायिकाओं ने हमें दिखा दिया है कि हर औरत को, चाहे वह पढ़ी-लिखी हो या बेपढ़ी-लिखी, इन्साफ़ हासिल करने के लिए सख़्त लड़ाई लड़नी पड़ेगी।"

❐

अख़बार, रेडियो और टेलिविज़न - सब-के-सब इस फ़ैसले पर बिना रुके बहस-मुबाहसा करने में जुटे हुए हैं। कुछ जानकार ख़ुद से सवाल कर रहे हैं, इसमें किसने दख़लन्दाज़ी की? कोई जज पहले से सोच कर किये गये सामूहिक बलात्कार के लिए मुजरिम ठहराये जाने के उस फ़ैसले को, जिसे एक आतंकवाद विरोधी अदालत ने दिया है, पूरी तरह कैसे उलट सकता है? किस बुनियाद पर? मेरे पास इसका जवाब नहीं है। यह मेरे वकील के ग़ौर करने की चीज़ है।

उसी शाम, मैं अपने गाँव लौटती हूँ, क्योंकि हमें पता चला है कि पाकिस्तान में कैनेडा की हाई कमिशनर, मिसिज़ मार्गरेट ह्यूबर अगले दिन मुझसे मिलने के लिए स्कूल में आ रही हैं। कैनेडा का दूतावास, सभी ग़ैर मुल्की दूतावासों की तरह, जो हुआ है उससे आगाह है। मिसिज़ ह्यूबर दोपहर होने तक आयेंगी, और मुझे उनका उचित स्वागत-सत्कार करने की चिन्ता है।

अपने सफ़र के दौरान वो अपने साथ चल रहे पत्रकारों के सामने एक ऐलान करती हैं।

''अन्तर्राष्ट्रीय विकास के कनेडियाई संस्थान के तत्वावधान में, कैनेडा स्कूल के विस्तार के लिए धन उपलब्ध करायेगा ताकि पहले से दाख़िल किये गये विद्यार्थियों के साथ-साथ उन विद्यार्थियों को भी जगह उपलब्ध करायी जा सके जो इस समय प्रतीक्षा सूची में हैं। मेरा देश यह उपहार मुख़्तार माई के भारी योगदान के सम्मान में दे रहा है, जो पाकिस्तान और पूरी दुनिया में महिला अधिकारों और औरत-मर्द के बीच बराबरी के संघर्ष की एक योद्धा हैं। औरतों पर हिंसा आज भी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हमारी एक महामारी बनी हुई है। मुख़्तार माई के साथ जो किया गया, उसने दूसरी ज़्यादातर औरतों को तोड़ दिया होता। एक कबाइली पंचायत के आदेश पर सामूहिक बलात्कार की शिकार मुख़्तार माई ने चुप रहना कबूल नहीं किया और मुआवज़े में उसे जो पैसे मिले, उनसे उसने अपने गाँव के लिए एक स्कूल बनाया। उसने बिना थके यह सुनिश्चित करने का काम किया है कि उसके गाँव की लड़कियों को उसकी किस्मत न भुगतनी पड़े। यह औरत अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस की सच्ची आत्मा का साकार रूप है!''

❑

मिसिज़ ह्यूबर हमारे साथ चार घण्टे बिताती हैं। उनकी मौजूदगी एक सहारा है, मगर इसके बावजूद वह मेरे लिए नसें चूर-चूर कर देने वाला दिन है, जिसे मैं टेलिफ़ोन के इर्द-गिर्द मँडराते हुए बिताती हूँ - अपने वकील से ख़बर का इन्तज़ार करती हुई, जो फ़ैसले की नकल हासिल करने की कोशिश कर रहा है।

आख़िरकार उसे पता चलता है कि मुजरिम 14 मार्च को जेल से छूटेंगे - उसूलन, क्योंकि मीडिया और एन.जी.ओ. के जोशीले कार्यकर्ताओं ने जेल के सामने कतारबन्दी कर ली है। नाराज़ रिपोर्टरों और प्रदर्शनकारियों की इस भीड़ के आगे पुलिस अपने सुपुर्द किये गये लोगों की सुरक्षा की गारण्टी नहीं कर सकती।

इस तयशुदा रिहाई में ऐसा फ़साद बरपा करने का जोखिम है जिसकी सरकार को दरअसल ज़रूरत नहीं है। लेकिन चूँकि मुझ पर पहले ही मीडिया और एन.जी.ओ. से

मदद स्वीकार करने का इल्ज़ाम है, इसलिए मैं इससे बाहर नहीं रहने वाली। कतई नहीं। सच तो यह है कि मेरी लड़ाई वैसी ही है जैसी वो लोग बरसों से लड़ते आ रहे हैं, और कोई मुझे चुप रहने पर मजबूर नहीं कर सकता। अगर मैं घर बैठती और अपनी किस्मत का सियापा करती तो मैं ख़ुद अपने साथ रह न पाती। मेरी ज़िम्मेदारियाँ हैं : अपने घरवालों की, अपनी जान की, और अपने स्कूल की हिफ़ाज़त की, जिसमें अब दो सौ से ज़्यादा बच्चे पढ़ते हैं।

ख़ुदा जानता है कि मैंने हमेशा सच बोला है। और मेरी हिम्मत भी ऐन-मैन वही है, सच्चाई, और मैं चाहती हूँ कि सच्चाई आख़िरकार उस भयानक गड्ढे से बाहर निकल आये जहाँ वो आदमी अपने दुमुँहेपन के साथ छिपे बैठे रहते हैं। इसीलिए मैं और नसीम एक हफ़्ते के सफ़र पर निकलते हैं, जो हमें थकान से चूर-चूर कर देगा।

9 मार्च को हम अगले दिन ज़िले के बड़े शहर मुज़फ़्फ़रगढ़ के लिए चलने की तैयारी करते हैं, जहाँ औरतों के ख़िलाफ़ हिंसा का विरोध करने के लिए एक और प्रदर्शन होगा। तकरीबन 1500 लोग वहाँ पहुँचते हैं। पाकिस्तान में मानवाधिकार सुरक्षा संगठन के अध्यक्ष अख़बार वालों से मुख़ातिब होने के लिए ख़ुद हाज़िर होते हैं। बड़े-बड़े पोस्टरों पर नारा लिखा है : ''हिम्मत रखो मुख़्तार माई - हम तुम्हारे साथ हैं।''

हम जहाँ भी जाते हैं, पुलिस हमारे साथ जाती है। कभी-कभी मैं सोचती हूँ कि क्या वो मेरी हिफ़ाज़त कर रहे हैं या मुझ पर नज़र रख रहे हैं। मैं आराम नहीं कर पायी हूँ, थकान से गिरने-गिरने को हूँ और 3 मार्च से ही एक अजीब-से बुख़ार से काँपती रही हूँ, उसी दिन से, जब वह धक्का लगा था। पीछे मेरे गाँव में कुछ प्रदर्शनकारियों ने मेरे घर के सामने डेरा डाल दिया है - रास्ते में भीड़ है, और आँगन में भी। इन लोगों को इकट्ठा करने के लिए जो लोग ज़िम्मेदार हैं, वो मुझे ख़बर देते हैं कि एक और प्रदर्शन, इस बार हुदूद के कानूनों के ख़िलाफ़, 16 मार्च को मुज़फ़्फ़रगढ़ में होगा। मुझे कुछ पता नहीं, बहरहाल, कि मैं उस तारीख़ को कहाँ हूँगी। मस्तोई तो फिर से घर होंगे - आज़ाद, लेकिन मैं नहीं।

और फिर एक बार मुलतान की तरफ़, अपने वकील के दफ़्तर, अदालत के फ़ैसले की नकल लेने के लिए जो उसने अभी-अभी हासिल की है। सड़क पर और तीन घण्टे का सफ़र। मैं इतना बीमार महसूस कर रही हूँ... मेरा सिर पत्थर की तरह है, मेरी टाँगें लड़खड़ा रही हैं, मेरा सारा बदन इस लड़ाई को लड़ते-लड़ते थक गया है जो कभी ख़त्म नहीं होती। नसीम को ड्राइवर से रुकने के लिए कहना पड़ता है ताकि वह मुझे वक्ती राहत देने के लिए कुछ दवाई खोज सके।

मैंने अभी मुश्किल से अपने वकील के दफ़्तर में कदम रखा है कि मेरा सेलफ़ोन, जिसे मैंने हाल ही में हिफ़ाज़त के मकसद से लिया है, बजता है। मेरा भाई शकूर है,

बदहवासी में चिल्लाता हुआ।

"घर वापस आ जा, जल्दी से! पुलिस ने हम से कहा है कि हम बाहर न निकलें! मस्तोई जेल से घण्टा भर पहले बाहर आये हैं! वो जल्दी ही यहाँ पहुँच जायेंगे और यहाँ हर जगह पुलिस है। तुझे जल्दी से यहाँ वापस आना है, मुख़्तार!"

इस बार लगता है कि मैं बाज़ी हार गयी हूँ। मुझे उम्मीद थी कि जज और अदालती हाकिम दख़ल देंगे, कि मेरे वकील को इस फ़ैसले के ख़िलाफ़ अपील दायर करने का वक्त मिलेगा। मुझे उम्मीद थी कि कुछ, कुछ भी, होगा, लेकिन अख़बार वालों, एन.जी.ओ., और सियासतदानों के दबाव की वजह से कम-से-कम इतना तो होगा कि वो जेल में रहेंगे। मैं नामुमकिन की उम्मीद कर रही थी।

आधी रात को अपने घर जाते हुए, मुझे एहसास होता है, जाने कैसे मैं जानती हूँ, कि हम पुलिस की उस गाड़ी से दूर नहीं हैं जो मेरे हमलावरों को उनके खेतों पर ले जा रही है। वो हम से थोड़ा ही आगे होंगे... मैं आगे की गाड़ियों की पिछली बत्तियों को घूरती हूँ और इस ख़याल से ग़ुस्से से काँपती हूँ कि हम उनके पीछे अटके पड़े हैं।

रात के ग्यारह बजे हैं जब हम घर पहुँचते हैं, घर पुलिस की लगभग दस गाड़ियों से घिरा हुआ है। और सड़क के उस पार, घने अँधेरे में, मस्तोइयों की हवेली के गिर्द भी ऐसी ही सरगर्मी का पता चल रहा है। वो सचमुच वहाँ हैं। पुलिस को पता नहीं है कि वो पाँच आदमी ताज़ा फ़ैसले के ख़िलाफ़ अपील के पहले भागेंगे या नहीं, जो अब तक दायर हो चुकी है। सबसे ऊपर, पुलिस हंगामे से बचना और किसी भी किस्म के पत्रकारों और प्रदर्शनकारियों को आने से रोकना चाहती है। अब गाँव में दाख़िल होने वाले रास्ते पर भी पहरेदार तैनात हैं, जो गाँव से बाहर जाने का भी रास्ता है, क्योंकि और कोई चलने लायक सड़क नहीं है।

"फ़िलहाल वो घर से बाहर नहीं आ सकते," नसीम मुझे आश्वस्त करती है, "जल्दी कर, कपड़े बदल, हम फिर बाहर जा रहे हैं।"

हमने कार से मुलतान जाने का पागलपन से भरा फ़ैसला किया है : वकील ने हमें सलाह दी है कि हम सीधे सदर मुशर्रफ़ से अपील करें और उनसे माँग करें कि सबसे पहले वो मेरी और मेरे घरवालों की हिफ़ाज़त के लिए दख़ल दें। लेकिन मैं इससे ज़्यादा चाहती हूँ। कहीं ज़्यादा। मैं चाहती हूँ वो सब वापस जेल में जायें, मैं चाहती हूँ, सुप्रीम कोर्ट फिर से फ़ाइल की जाँच करे... मैं इन्साफ़ चाहती हूँ। चाहे मुझे अपनी जान से इसकी कीमत चुकानी पड़े। मुझे अब किसी चीज़ का कोई डर नहीं रह गया है। मेरा ग़ुस्सा एक नायाब हथियार है, और मैं इस निज़ाम पर गुस्सा हूँ जो मुझे इस बात पर मजबूर करना चाहेगा कि मैं अपने गाँव में, उन आदमियों से गली भर की दूरी पर ख़ौफ़ में रहूँ, जिन्होंने मेरे साथ ज़बरदस्ती की थी और साफ़ बच निकले थे। वह वक्त कभी का बीत

गया जब मैं दब्बूपने से उस रास्ते पर कदम रखती हुई अपने घरवालों के नाम पर उन लोगों की 'इज़्ज़त' की ख़ातिर माफ़ी माँगने गयी थी।

वही हैं जो मेरे मुल्क को बदनाम करते हैं।

कार से तीन घण्टे सफ़र करके मुलतान, और फिर इस्लामाबाद के लिए बस पर नौ घण्टे गुज़ारने के बाद, हम 17 मार्च की सुबह-सवेरे मुल्क की राजधानी में पहुँचते हैं, और दुनिया में सब जगह से जोशीले कार्यकर्ता और रिपोर्टर हमारे पीछे-पीछे चले आते हैं। मैं घरेलू मामलों के वज़ीर से मिलने की माँग करती हूँ, पहले तो अपनी हिफ़ाज़त के लिए; दूसरे, इसलिए कि मस्तोइयों पर इलाके से बाहर न जाने की पाबन्दी लगायी जाये। मैं जानती हूँ, वो क्या करने के काबिल हैं। मिसाल के लिए, अपने कबीले को इकट्ठा करने के और एक ऐसे कबाइली इलाके में चुपचाप घुस जाने के, जहाँ फिर कोई उनकी शिनाख़्त करने में कामयाब नहीं होगा; और किसी भाई-बन्द, किसी साथी-संगी को पैसे दे कर मुझे मारने के। मैं बदला लेने के उनके सभी मुमकिन तरीकों की कल्पना करती हूँ : आग, तेज़ाब, अपहरण। घर और स्कूल को जला देना।

बहरहाल, जब मन्त्री हमसे मुलाकात करते हैं तो हालाँकि मैं बेतहाशा थकी हुई हूँ, मैं शान्त और अडिग रहती हूँ।

"तुम्हें समझना चाहिए कि इतनी आसानी से कोई लाहौर की अदालत के फ़ैसले को नज़रन्दाज़ नहीं कर सकता।"

"लेकिन मैं आपसे दरख़ास्त कर रही हूँ कि आप कुछ कीजिए - मेरी ज़िन्दगी ख़तरे में है।"

"एक ख़ास कार्रवाई है : घरेलू मामलों के वज़ीर की हैसियत से मैं गिरफ़्तारी का एक नया वारण्ट जारी कर सकता हूँ, इस बात पर ग़ौर करते हुए कि ये आदमी आम लोगों की हिफ़ाज़त के लिए एक ख़तरा हैं। लेकिन हुकूमत इस अख़्तियार को उनके छोड़े जाने के वक्त से बहत्तर घण्टे के अन्दर ही अमल में ला सकती है। यही कायदा है।"

बहत्तर घण्टे। तीन दिन... वो पन्द्रह तारीख़ की शाम को घर पहुँचे थे, और अब अट्ठारह तारीख़ की सुबह है। कितने घण्टे बचे हैं?

"वज़ीर साहब, मैं कानूनों से वाकिफ़ नहीं हूँ, न कायदों से, लेकिन मैं सिर्फ़ इतना जानती हूँ कि वो खुले छोड़ दिये गये हैं और मैं और मेरे घरवाले ख़तरे में हैं - मैं फिर आपसे बिनती करती हूँ कि आप मेरी हिफ़ाज़त के लिए कुछ करें।"

मन्त्री ने मुझे इतमीनान दिलाया कि मेरी हिफ़ाज़त को पक्का करने के लिए कानूनन जो कुछ उनके अख़्तियार में होगा, उसे वो ज़रूर करेंगे।

❐

हम तीन रात पहले से सफ़र पर हैं, और मैं सिर्फ़ दो या तीन घण्टे सोयी हूँ, लेकिन जब मैं घरेलू मामलों के मन्त्री के दफ़्तर से निकलती हूँ तो मैं एक प्रेस कॉन्फ़रेन्स में हिस्सा लेती हूँ। नसीम और मैं अब रात और दिन का फ़र्क नहीं बता पाते, और हमें यह भी याद नहीं है कि आख़िरी बार हमने कब खाया था।

अगली सुबह ग्यारह बजे, लो, हम वज़ीरे आला के दफ़्तर में हैं। हमने दस से ज़्यादा बार घण्टों की गिनती की है, और अगर हमारा हिसाब सही है तो बहत्तर घण्टे एक घण्टा पहले पूरे हुए।

वज़ीरे आला भी हमें तसल्ली देने की कोशिश करते हैं।

"मुझे विश्वास है कि उन्हें बहत्तर घण्टे पूरे होने से पहले ही गिरफ़्तार कर लिया गया था।"

"नहीं। मैं आपसे एक पक्का जवाब पाना चाहती हूँ।"

नसीम उर्दू में तर्जुमा करती है, उसी दिलेर अन्दाज़ में जिसमें मैंने कहा था।

कौन मुझे कभी यह बता सकता था कि मैं अपने मुल्क के वज़ीरे आला से इस तरह बात करूँगी? मैं, मीरवाला की मुख़्तारन बीबी, एक ख़ामोश, दब्बू किसान औरत, जिसे अब 'माई' कहते हैं - मैं कितना बदल गयी हूँ। यहाँ मैं बैठी हूँ, अदब से मगर ज़िद्दीपन से, इन वज़ीर साहब के सामने एक उम्दा हत्थेदार कुर्सी में - और इससे पहले कि मुझे यह तस्दीक करा दिया जाये कि वो जंगली वापस जेल भेज दिये गये हैं, सिर्फ़ फ़ौज ही मुझे यहाँ से बाहर निकाल सकती है। और मैं जानना चाहती हूँ कि ऐसा ठीक-ठीक कब हुआ है। अगर हुआ है तो! क्योंकि 3 मार्च के बाद से मैं अब किसी पर भरोसा नहीं करती।

"पुलिस को गिरफ़्तारी का नया वारण्ट मिल गया है; पुलिस का एक दस्ता उन्हें लाने के लिए गाँव गया है। दस बजे गिरफ़्तारी के लिए गये अफ़सरों ने उन्हें हथकड़ियाँ लगायीं; और पुलिस कप्तान इन्तज़ार कर रहा है। वो जल्द ही उसके सामने पेश होंगे।"

वज़ीरे आला के दफ़्तर से बाहर आने पर मैं ख़ुद तस्दीक करने के लिए कप्तान को फ़ोन करती हूँ, लेकिन वो अपने सभी साथी अफ़सरों के साथ पड़ोस के ज़िले में गया हुआ है : सदर मुशर्रफ़ इलाके का दौरा कर रहे हैं और हर अफ़सर ड्यूटी पर है। कम-से-कम उस दौरे का मुझसे कोई ताल्लुक नहीं है...

लिहाज़ा मैं अपने घर पर शकूर से बात करने की कोशिश करती हूँ, मगर पाती हूँ कि फ़ोन मिल नहीं रहा : हम बारिश के मौसम के बीचों-बीच हैं और अपने भाई से बात करना नामुमकिन है। आख़िरकार, मैं एक रिश्ते के भाई से बात करने में कामयाब हो जाती हूँ जो एक दुकान चलाता है।

"हाँ, यह सच है। हमने आज दोपहर के वक्त पुलिस को देखा था - वो जुम्मे की

नमाज़ के फ़ौरन बाद उन चारों-के-चारों को गिरफ़्तार करने आये थे, और बाकी आठ को भी। और वो उन्हें ले भी गये हैं। अरे, वो पागल हो कर पैर पटक रहे थे। सारा गाँव इस बारे में जानता है।"

उम्मीद तो इसी की करनी चाहिए। इस दफ़ा, मैं नहीं हूँ जो ग़ुस्से में पैर पटक रही हूँ।

मुझे पता नहीं कि आगे क्या होगा, इसलिए नसीम कानूनी कार्रवाई के बारे में समझाती है।

"पंजाब के सूबे की सरकार ने इन आदमियों को एक ख़ास फ़ैसले के तहत वापस जेल भेजा है, मगर सिर्फ़ नब्बे दिन के लिए। गवर्नर किसी को भी जिसे वो चाहता है महज़ एक हुक्म जारी करके गिरफ़्तार करा सकता है अगर एक बार वह इस नतीजे पर पहुँच जाय कि वह आदमी आम अमन-चैन के लिए एक ख़तरा है। इस दौरान अदालत तेरी अपील पर ग़ौर कर सकेगी।"

❐

हम 20 मार्च को घर वापस आते हैं, और धमकियाँ फिर शुरू हो जाती हैं। मस्तोइयों के शरीक हर जगह कह रहे हैं कि वो हमारे ख़िलाफ़ कुछ करने जा रहे हैं, क्योंकि यह हमारी ग़लती है कि वो आदमी दोबारा गिरफ़्तार किये गये। अब वो नसीम से नाराज़ हैं। उनका दावा है कि मैं उसके बिना कुछ भी न कर पाती। और यह सच है। हम सहेलियाँ हैं, और हम एक-दूसरे को हर चीज़ बता देती हैं। हमने मिल कर चीज़ों का सामना किया है, डर, ग़ुस्से और ख़ुशी के एक-से जज़्बात आपस में बाँटे हैं। हम साथ-साथ रोयी हैं, और साथ-साथ पलट कर लड़ी हैं। ख़ौफ़ हमेशा मौजूद रहता है, वहाँ हमारा इन्तज़ार करता हुआ, लेकिन हममें हिम्मत है। 16 मार्च की प्रेस कॉन्फ़रेन्स के दौरान कुछ रिपोर्टरों ने मुझसे पूछा था कि क्या मैं पाकिस्तान छोड़ना और किसी दूसरे मुल्क में पनाह लेना चाहती हूँ। मैंने जवाब दिया था कि मेरा ऐसा करने का कोई इरादा नहीं था और यह कि मुझे यहीं अपने वतन में इन्साफ़ हासिल होने की उम्मीद थी। और मैंने ज़ोर दे कर कहा था कि मेरा स्कूल कामयाबी से चल रहा था, जिसमें 200 लड़कियाँ और 150 लड़के पढ़ रहे थे।

यह आख़िरी बयान 16 मार्च को यकीनन सच था, लेकिन 20 मार्च के बाद चीज़ों में काफ़ी फ़र्क आया है। एक बार फिर अपने गिरोह के सरदार, भाइयों और दोस्तों को खोने के ख़तरे का सामना करते ही मस्तोई इर्द-गिर्द मीलों के दायरे में ग़ुस्से और नफ़रत की लहरें फैला रहे लगते हैं। बहरहाल, पुलिस मेरे गिर्द एक हिफ़ाज़ती बाड़ा बना लेती है, और हालाँकि यह मेरी घूमने-फिरने की आज़ादी के लिए एक बोझ है, मैं इसकी आदी हो चुकी हूँ।

11 जून को मुझे पता चलता है कि मेरी हिफ़ाज़त के ख़याल से मुझे सफ़र करने की मनाही हो गयी है। ऐमनेस्टी इण्टरनेशनल ने मुझे कैनेडा और अमरीका आने की

दावत दी है, लेकिन जब मैं कुछ रस्मी कार्रवाई पूरी करने के लिए इस्लामाबाद जाती हूँ, तो मुझे मालूम होता है कि मुझे वीसा देने से मना कर दिया गया है, क्योंकि मुझे इलाका छोड़ कर जाने की इजाज़त नहीं है।

और फिर मेरा पासपोर्ट मुझसे ले लिया जाता है। मुझ तक पहुँचने से मना किये जाने पर मेरा वकील नाराज़ हो कर पत्रकारों के सामने ऐलान करता है कि मुझे इस्लामाबाद में कहीं बन्धक बना कर रखा जा रहा है, और चूँकि मैं उसकी मुवक्किल हूँ, उसे मुझसे हर हाल में बात करनी ही है। अफ़सर उसे बताते हैं कि हिफ़ाज़त के ख़याल से एहतियात बरतने के लिए मैं एक किस्म की नज़रबन्दी में हूँ। राष्ट्रपति ख़ुद ऐसा महसूस कर रहे लगते हैं कि हमें "मुल्क के बाहर कौम की एक ख़राब तस्वीर पेश करने से" बचना चाहिए। सफ़र पर लगी ये नयी पाबन्दियाँ मानवाधिकारों के रक्षकों और अन्तर्राष्ट्रीय प्रेस के बीच एक नयी हलचल पैदा कर देती हैं।

असेम्बली में एक बहस के दौरान, एक सेनेटर - एक औरत - यहाँ तक ऐलान करती है कि मैं एक "फ़िरंगी औरत" बन गयी हूँ, जिसे मुल्क के बाहर सफ़र न करके, और इसकी बजाय "ख़ुदा के इन्साफ़" का इन्तज़ार करके, "ज़्यादा विनम्रता और विवेक दिखाना चाहिए।" कुछ सियासतदाँ खुल्लम-खुल्ला एन.जी.ओ. की मलामत करते हैं कि उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय बिरादरी को अपीलें की हैं। थोड़े में, यह मेरे "फ़ायदे" में है, जैसा कि वो कहते हैं, कि मैं अपनी कहानी दुनिया भर में न फैलाऊँ, और यहाँ घर पर हर चीज़ की देख-भाल करूँ।

यह दावा करते हुए कि मैं पाकिस्तान के इस्लामी लोकतन्त्र के कानूनों की इज़्ज़त नहीं करती, कुछ कट्टरपन्थी मुझे चुप करने के लिए मजबूर करना पसन्द करेंगे, लेकिन बहुत ज़्यादा लोग मेरी हिमायत करते हैं, यहाँ मेरे मुल्क में भी और बाहर भी।

❐

यह एक लम्बा, कठिन रास्ता है... और फिर 15 जून को मुझे पता चलता है कि वज़ीरे आला ने हिदायत दी है कि मेरा नाम उन लोगों की फ़ेहरिस्त से हटा दिया जाय जिन्हें इलाके से बाहर जाने की मनाही है।

28 जून को मेरे चेहरे पर मुस्कान है। इस्लामाबाद में सुप्रीम कोर्ट ने दो दिन की सुनवाई के बाद अभी-अभी मेरे मामले को फिर से खोलने की मंज़ूरी दे दी है। मेरा वकील भी मुस्करा रहा है, जिसने बड़ी अक्लमन्दी से मुझे राय दी थी कि इलाके से बाहर जाने से मुझे मना कर दिये जाने के बाद मैं पत्रकारों से बात न करूँ।

"अब तुम उन्हें जो चाहो बता सकती हो। मेरी तरफ़ से अब और पाबन्दी नहीं।"

उसने रिपोर्टरों से कहा था कि अभी जब तक कि सुप्रीम कोर्ट ने नीचे की अदालत

के फ़ैसले पर दोबारा ग़ौर करना मंज़ूर नहीं किया था, प्रेस की हिमायत से मेरे मुकदमे को नुकसान पहुँच सकता था, क्योंकि सुप्रीम कोर्ट की आज़ादी के बारे में कोई उँगली नहीं उठनी चाहिए। जब मैं आख़िरी सुनवाई से बाहर आती हूँ, मुझ पर सवालों की बौछार होने लगती है। अपने जज़्बों के बहाव में मैं उन सारी औरतों के गले लगती हूँ, जिन्होंने मेरी लड़ाई में मेरी मदद की है।

"मैं कितनी ख़ुश हूँ, मुझे वाकई सन्तोष है। मैं उम्मीद करती हूँ कि जिन्होंने मुझे ज़लील किया था उन्हें सज़ा मिलेगी। मैं सुप्रीम कोर्ट के फ़ैसले का इन्तज़ार करूँगी जो यहीं इसी दुनिया में इन्साफ़ करेगी।"

और ख़ुदा का इन्साफ़ अपने वक्त से आयेगा।

मेरा वकील पत्रकारों के लिए तस्दीक करता है कि वो आठ आदमी जो बरी कर दिये गये थे, अब जेल में हैं। इनमें गाँव की पंचायत के वो सदस्य शामिल हैं जिन्होंने पहले से सोच कर ज़िना-बिल-जब्र का इरादा बनाया था।

"यह सीधे-सादे बलात्कार का मामला नहीं है, बल्कि हकीकत में दहशतगर्दी की कार्रवाई है। यह कार्रवाई गाँव की सारी आबादी में ऊपर से नीचे तक दहशत फैलाने के लिए की गयी थी। इन आदमियों पर हमारे मुल्क की सबसे बड़ी अदालत में फिर से मुकदमा चलाने का फ़ैसला, ताकि सारे सबूतों पर दोबारा ग़ौर किया जा सके, बहुत स्वागत योग्य कदम है।"

❐

मैं राहत महसूस कर रही थी। मैं अपने गाँव, अपने घरवालों और अपने स्कूल के बच्चों के पास लौट सकती थी। पुलिस की निगरानी कुछ और वक्त तक चलती रही और ख़ास तौर पर तब नुमायाँ होती जब मैं विदेशी पत्रकारों को इण्टरव्यू देने के लिए राज़ी होती। फिर दबाव कम हो गया और निगरानी बस मेरे दरवाज़े पर पहरा देते एक हथियारबन्द सिपाही तक सीमित रह गयी। लेकिन बाहर के मुल्क से कोई रिपोर्टर दरवाज़े पर शक्ल भर दिखा दे, और मेरी "सुरक्षा" फिर से हाज़िर हो जाती।

स्थानीय प्रेस में अब भी यहाँ-वहाँ कुछ हमले हो रहे थे, और वो छोटे-मोटे मामले नहीं थे। एक सबसे हैरतंगेज़ लेख मुल्क के बाहर सफ़र करने के लिए मेरी दरख़्वास्त के बारे में था, जिसने काफ़ी विवाद खड़ा किया। उसूलन, मुझे अब भी कैनेडा और अमरीका से न्योता मिला हुआ था, लेकिन मैंने सार्वजनिक रूप से उन यात्राओं को मुल्तवी कर दिया था ताकि अगर कुछ लोगों के मन में कुछ शक-शुब्हा हो तो वह दूर हो जाय। सच्चाई यह है कि मुझे वीसा नहीं दिया गया था। बाहर के मुल्कों में पाकिस्तान को बदनाम करने से मुझे रोकने के लिए! और इतना ही नहीं, नसीम के शब्दों में कहें तो,

"ऊँची जगहों पर बैठे" लोगों ने दावा किया है कि एक औरत को लखपति बनने और वीसा पाने के लिए बस यही करने की ज़रूरत है कि... अपना बलात्कार करा ले। मानो पाकिस्तानी औरतें मुल्क से बाहर निकल भागने की ख़ातिर यह "रस्म-अदायगी" पूरी करने के लिए भगदड़ मचा देंगी! मुझे इस गन्दे और शर्मनाक सुझाव पर अफ़सोस है। एक बार फिर, मुल्क के अन्दर और बाहर के प्रेस ने ऐसे बयानों का विरोध किया। इसके अलावा, लगता है कि जिस बयान पर सवाल उठा, उसे रिपोर्टरों ने भूल से ग़लत समझ लिया होगा, और उसका वह मतलब नहीं था। मुझे यही उम्मीद है।

❐

मैं अपने लिए और अपने मुल्क में हिंसा का शिकार बनी सारी औरतों के लिए लड़ी हूँ। अपना गाँव, अपना घर, अपना कुनबा और अपना स्कूल छोड़ने का मेरा कोई इरादा नहीं है। न बाहरी मुल्कों में पाकिस्तान की बदनामी करने की मेरी कोई ख़्वाहिश है। इसके बिलकुल उलट, एक इन्सान होने के अपने अधिकार की रक्षा करके, कबाइली इन्साफ़ के उस उसूल के ख़िलाफ़ जद्दो-जेहद करके जो हमारी इस्लामी जम्हूरियत के सरकारी कानून के विरोध में खड़ा है, मुझे पूरा यकीन है कि मैं अपने मुल्क के सियासी इरादों की ही हिमायत कर रही हूँ। कोई पाकिस्तानी आदमी जिसे अपने नाम पर गर्व है, गाँव की एक पंचायत को इस बात के लिए नहीं उकसा सकता कि वह एक औरत को सज़ा दे कर इज़्ज़त का कोई मामला हल करे।

मैं, न चाहते हुए भी, उन सारी औरतों के लिए एक निशानी बन गयी हूँ जिन्हें बुज़ुर्गों और कबीले के सरदारों की ज़ोर-ज़बरदस्ती सहनी पड़ती है, और अगर मेरी यह छवि हमारी सरहदों के पार फैल गयी है तो यह मेरे मुल्क के हक में ही हो सकता है। क्योंकि यही मेरे वतन की सच्ची प्रतिष्ठा है : एक औरत को, चाहे वो पढ़ी-लिखी हो या बेपढ़ी-लिखी, अपने ख़िलाफ़ की गयी नाइन्साफ़ी के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने की इजाज़त देना।

क्योंकि मेरे मुल्क को अपने आप से जो असली सवाल करना चाहिए, वो यह है कि अगर मर्दों की इज़्ज़त औरतों से वाबस्ता है तो फिर मर्द उस इज़्ज़त को मारना या उसके साथ ज़िना क्यों करना चाहते हैं?

कौसर के आँसू

एक दिन नहीं गुज़रता जब औरतें सदमे की हालत में मुझसे, और नसीम से भी, मदद माँगने यहाँ नहीं आतीं। एक दिन एक पत्रकार, एक पाकिस्तानी औरत ने मुझसे पूछा कि अपने वतन में ऐसी शोहरत के साथ मैं कैसे निभा रही हूँ।

"कुछ औरतों ने," मैंने उसे बताया था, "मुझसे यह कबूल किया है कि अगर उनके शौहर उन्हें पीटें तो वो उन्हें पलट कर धमकी देने से नहीं हिचकेंगी कि 'ख़बरदार - मैं जा कर मुख़्तार माई से शिकायत कर दूँगी'।"

यह तो एक मज़ाक था। लेकिन असली ज़िन्दगी में हम हर वक्त हादसों से निपटते रहते हैं।

❐

आज, अक्तूबर के इस रोज़, जब नसीम मुझे अपनी कहानी को ख़त्म करने में मदद दे रही है, दो औरतें रुकावट डालने के लिए आ पहुँचती हैं।

वो मीलों दूर से मुझे मिलने आयी हैं : एक माँ अपनी बेटी कौसर के साथ जो तकरीबन बीस साल की जवान शादीशुदा औरत है। कौसर ने अपना पहला बच्चा बाँहों में उठाया हुआ है, शायद ढाई बरस की एक लड़की, और वह हमें बताती है कि जल्द ही उसे दूसरा बच्चा होने वाला है। उसकी आँखें डर से चमक रही हैं, और थकान से सिकुड़े उसके ख़ूबसूरत चेहरे पर आँसुओं के निशान हैं।

"मेरे आदमी का एक पड़ोसी से झगड़ा हो गया, जो हमारे घर खाने या सोने के लिए ज़रूरत से ज़्यादा आया-जाया करता था। मेरे आदमी ने उसे समझाया कि हम हमेशा इस तरह उसकी ख़ातिर नहीं कर सकते। एक दिन, जब मैं चपातियाँ बना रही थी, चार आदमी हमारे घर में घुस आये। उनमें से एक ने मेरे आदमी के माथे पर बन्दूक लगा दी, दूसरे ने अपनी बन्दूक मेरी छाती पर तान दी और बाकी दो ने मेरे सिर के गिर्द एक

चिथड़ा लपेट दिया - मैं कुछ भी देख नहीं सकती थी। जब वो मुझे ज़मीन पर घसीटते हुए ले जा रहे थे तब मैं अपने आदमी की चीख़ें सुन रही थी, और मुझे उस बच्चे का डर था जो मेरे पेट में था। उन्होंने मुझे एक कार में धकेल दिया जो काफ़ी देर तक चलती रही, और जब मैंने सड़कों पर बहुत-सी कारों-मोटरों की आवाज़ें सुनीं तो मुझे एहसास हुआ कि वो मुझे किसी शहर में ले आये हैं। उन्होंने मुझे एक कमरे में बन्द कर दिया जहाँ दो महीने तक वो हर रोज़ मेरी इज़्ज़त लूटने के लिए आते थे। मैं भाग नहीं सकती थी - कमरा छोटा था, बिना खिड़की का, और हर वक्त कई लोग दरवाज़े पर पहरा देते थे। मैं अप्रैल से जून तक उस कमरे में कैद रही। मैं अपने आदमी और अपनी बच्ची के बारे में सोचती थी, डरती हुई कि वो गाँव में मर गये होंगे। मैं पागल होती जा रही थी, मैं ख़ुद को मार देना पसन्द करती, लेकिन उस कमरे में कुछ नहीं था। उन्होंने मुझे कुत्ते की तरह तश्तरी से खाने पर मजबूर किया। और कुत्ते की तरह पानी पीने पर। वो बारी-बारी से मुझे इस्तेमाल करते।

"और फिर, एक दिन, वो मुझे दोबारा एक कार में घसीट ले गये, मेरे सिर पर एक कपड़ा डाल कर, फिर मीलों तक चले, शहर के बाहर। उसके बाद उन्होंने मुझे सड़क पर फेंका, कार में भाग निकले, और मुझे वहीं छोड़ दिया, बिलकुल अकेली। मुझे यह भी नहीं पता था कि मैं कहाँ थी।

"मैं चलती रही जब तक कि आख़िरकार मैं अपने गाँव नहीं पहुँच गयी, मुहम्मदपुर के इलाके में, और मुझे एहसास हुआ कि वह शहर जहाँ वो मुझे ले गये थे, कराची रहा होगा, दूर दक्खिन में। जब मैं घर पहुँची, मेरा आदमी ज़िन्दा था, मेरे माँ-बाप ने मेरी नन्ही-सी लड़की की देख-भाल की थी, और उन्होंने ज़िले की पुलिस में शिकायत भी दर्ज करायी थी। और मैं पुलिस को ख़ुद यह बताने के लिए गयी कि मेरे साथ क्या किया गया था। मैंने उनके चेहरे बताये, मैं उन चार आदमियों को पहचान सकती थी, और मेरा आदमी जानता था कि वह पड़ोसी उसका दुश्मन बन गया था और उसने अपना बदला मुझसे लिया था। पुलिस ने मेरी बात सुनी, और उस अफ़सर ने एक रिपोर्ट पर मेरा अँगूठा लगवा कर दस्तख़त करवाये। चूँकि मैं लिखना-पढ़ना नहीं जानती, उसने कहा कि वह मेरी तरफ़ से रिपोर्ट तैयार कर देगा।

"लेकिन जब जज ने मुझे बुलाया, और मैंने उसे वह सब कुछ बताया जो मेरे साथ हुआ था तो उसने कहा, 'तू मुझे वही चीज़ नहीं बता रही जो तूने पुलिस को बतायी थी। क्या तू झूठ बोल रही है?'

"जज ने मुझे बारह बार तलब किया, और हर बार मुझे दोहराना पड़ा कि मैं नहीं जानती थी पुलिसवाले ने क्या लिखा था, लेकिन यह कि मैंने सच कहा था। जज ने उन चार आदमियों को पूछ-ताछ के लिए पकड़वा मँगाया। उन्होंने कहा कि मैंने झूठ बोला

था। वो मेरे माँ-बाप को धमकाने आये, ज़िद करते हुए कि वो गुनहगार नहीं हैं, और यह कि मेरे माँ-बाप को यह बात जज को बतानी होगी। जब मेरे बाप ने इनकार किया तो उन्होंने उसे मारा-पीटा और उसकी नाक तोड़ दी।

"आख़िरकार, जज ने एक आदमी को जेल में डाल दिया, और बाकी तीन को जाने दिया। हम उनसे इतना डरे हुए हैं। मुझे पता नहीं कि उनमें से बस एक को क्यों बन्द किया गया है - वही अकेला तो नहीं था जिसने मेरी इज़्ज़त लूटी थी। उन आदमियों ने मेरी ज़िन्दगी और मेरा कुनबा बरबाद कर दिया। मुझे दो महीने का हमल था, जब उन लोगों ने मेरे साथ ज़बरदसती की, मेरा आदमी पक्के तौर पर यह जानता है, लेकिन गाँव में लोग अब मेरे बारे में बातें बना रहे हैं। और वो बुरे आदमी आज़ाद हैं। वो बलूच हैं। वो हमसे ज़्यादातर ताकतवर हैं और मेरे घरवालों से नफ़रत करते हैं, लेकिन हमने कभी किसी को चोट नहीं पहुँचायी। मेरा आदमी मेरा चचेरा भाई है, हमारी शादी बचपन में ही हो गयी थी, और वह एक ईमानदार आदमी है। जब वह पुलिस के पास गया तो पहले-पहले किसी ने उसे नहीं सुना... "

❒

कौसर रोती है, बिना आवाज़ किये, बिना रुके। मैं ज़ोर देती हूँ कि वह पानी पिये, कुछ खा ले, लेकिन उसके लिए यह मुश्किल है। उसकी आँखों में इतनी तकलीफ़ है, और उसकी माँ की आँखों में इतना दर्द-भरा सबर... नसीम उन्हें कानून समझा देगी, और उन्हें बता देगी कि वकील के लिए वो किस संस्था को अर्ज़ी दें। हम उन्हें थोड़े-से पैसे देते हैं, ताकि वह अपने गाँव वापस जा सके, लेकिन मैं जानती हूँ कि आगे का रास्ता उसके लिए भी लम्बा होगा। अगर उसमें पलट कर लड़ने की हिम्मत है तो वह और उसके घरवाले लगातार ख़तरे के साये में रहेंगे, जब तक कि उसे इन्साफ़ नहीं मिल जाता। अगर कभी मिलता है तो। उस कुनबे के पास कहीं और जाने का कोई रास्ता नहीं है - उनका घर, उनकी ज़िन्दगियाँ उस गाँव में हैं। उसका बच्चा पैदा होगा, और वो हादसा कौसर की ज़िन्दगी के आख़िर तक उसका पीछा करता रहेगा। वह कभी नहीं भूलेगी। जैसे मैं भी नहीं भूली हूँ।

कानून का तकाज़ा है कि पुलिस एक आरम्भिक जाँच रिपोर्ट तैयार करे। और वह हमेशा वही चीज़ होती है : वो औरत से कहते हैं, "अपने अँगूठे का निशान लगा दो, हम इसे तुम्हारे लिए लिख देंगे," और जब यह रिपोर्ट जज के पास पहुँचती है, मुजरिम हमेशा बेकसूर होते हैं, और औरत ने झूठ बोला होता है।

एक आदमी दूसरे आदमी को गाँव के किसी झगड़े के लिए सज़ा देना चाहता है, सो वह एक मासूम नौजवान बीवी और माँ को, जिसके पेट में उसका अगला बच्चा है,

हथियारबन्द लोगों से अग़वा कराता है और उसका सामूहिक बलात्कार कराता है। उस आदमी को शुरू से यकीन है कि वह साफ़ छूट जायेगा, और अगर वह जेल जाता भी है तो ज़्यादा दिनों के लिए नहीं। देर-सबेर वह अपील करने पर छोड़ दिया जायेगा, "मुनासिब" सबूत की कमी से। और लोग शायद कहेंगे कि उस निकम्मी औरत की रज़ामन्दी रही होगी, कि उसने रंडी बन कर अपने जिस्म का सौदा किया होगा। उसकी नेकनामी, उसकी और उसके घरवालों की इज़्ज़त, हमेशा-हमेशा के लिए बरबाद हो जायेगी। और ख़राब-से-ख़राब मामलों में वह हुदूद के कानूनों के मुताबिक ख़ुद ज़िना और इस्मतफ़रोशी के लिए सज़ावार ठहराये जाने का जोखिम उठाती है। इस भयानक सज़ा से बचने के लिए या तो मुल्ज़िमों को जज के सामने अपना "गुनाह" स्वीकार करना होगा, या फिर शिकायत करने वाली को "गुनाह" के वो मशहूर चार भरोसे-योग्य चश्मदीद गवाह पेश करने होंगे।

ऐसे निज़ाम द्वारा सुरक्षित, अपराधी जो चाहते हैं, करते हैं।

❒

एक और औरत मेरा इन्तज़ार कर रही है; उसका चेहरा एक फटीचर-सी नकाब से आधा ढँका हुआ है। घरेलू काम-काज से थकी-टूटी, उसकी कोई उम्र नहीं है। उसके लिए बोलना मुश्किल है। वह मुझको महज़ अपना चेहरा दिखाती है, छिपा कर, शर्मिन्दगी से। और मैं समझ जाती हूँ। तेज़ाब ने उसका आधा हिस्सा खा लिया है। और वो अब रो भी नहीं सकती। किसने किया यह? उसके शौहर ने। क्यों? वह उसे पीटा करता था, वह उसकी ख़िदमत उतनी तेज़ी से नहीं करती थी जितनी वह चाहता था। और अब जब उसने उसको ज़िन्दगी भर के लिए बिगाड़ दिया है, वह उससे हिकारत करता है। हम उसके लिए कुछ ज़्यादा नहीं कर सकते - थोड़ी-सी हमदर्दी, और कुछ पैसे ताकि वह अपने पति को छोड़ कर अपने घरवालों के बीच लौट जाये, अगर वह लौट सके तो।

❒

कभी-कभी समस्या की विराटता मुझे परेशान कर देती है। कभी-कभी मैं इतना नाराज़ होती हूँ कि मैं साँस भी मुश्किल से ले पाती हूँ। लेकिन मैं हताश नहीं होती। मेरी ज़िन्दगी का एक मतलब है। मेरी बदनसीबी बस्तीवालों के काम आ रही है।

नन्ही लड़कियों को सिखाना निस्बतन आसान है, जबकि लड़के, जो जानवरों की इस दुनिया में पैदा होते हैं और अपने बुज़ुर्गों के व्यवहार से सीखते हैं, एक ज़्यादा मुश्किल चुनौती पेश करते हैं। चूँकि तकलीफ़ और आँसू उन्हें कुछ नहीं सिखाते, औरतों को मिलने वाला इन्साफ़ ही उन्हें हर गुज़रती पीढ़ी के साथ सिखायेगा।

मुझे भी सुप्रीम कोर्ट से एक दो-टूक फ़ैसले का इन्तज़ार है। मैं यहाँ दुनिया में उसके इन्साफ़ में भरोसा करती हूँ, वैसे ही जैसे मैं आख़िरी फ़ैसले के लिए ख़ुदा पर यकीन करती हूँ। क्योंकि अगर मुझे इन्साफ़ न मिला, अगर इस गाँव में रहने के मेरे इरादे की वजह से मैं अन्तहीन लड़ाई बरदाश्त करने और एक दिन अपनी ज़िन्दगी से भी इसकी कीमत चुकाने पर मजबूर हुई, तो गुनहगारों को ख़ुदाई सज़ा मिलेगी।

अक्तूबर का यह दिन ख़त्म हो रहा है, तकलीफ़ और मुसीबत के अपने हिस्से के साथ, लेकिन अगले दिन की सुबह दूसरी तकलीफ़ें उजागर करेगी। मुल्क के सारे उत्तरी हिस्से में धरती काँपी है। हज़ारों मरे हैं, ज़ख़्मी हैं, हज़ारों बेघर हो गये हैं, हज़ारों भूखे बच्चे उन खँडहरों में भटक रहे हैं, जो कभी उनकी ज़िन्दगियाँ थे। पंजाब का मेरा सूबा इस तबाही से बचा हुआ है, और मैं उन सारे दुखी लोगों के लिए, अपने स्कूलों के खँडहरों में मरे पड़े उन सारे बच्चों के लिए दुआ करती हूँ।

उनके लिए दुआ करना काफ़ी नहीं होगा। पाकिस्तान को दूसरे मुल्कों से सहायता की ज़रूरत है। इस बार मुझे बाहर जाने का अधिकार मिल गया है, डॉ. आमना बुत्तर के साथ जो औरतों के ख़िलाफ़ हिंसा से लड़ने वाले संगठन - एशिया अमरीका नेटवर्क - की अध्यक्ष हैं। एक पत्रिका ने अभी-अभी मुझे "इस वर्ष की महिला" घोषित किया है। यकीनन, मैं सम्मानित महसूस कर रही हूँ, लेकिन यह मेरी यात्रा का प्रमुख कारण नहीं है।

मैं चाहती हूँ कि इस मौके का फ़ायदा उठा कर सिर्फ़ औरतों के मकसद ही की नहीं, बल्कि इस बेरहम वक्त में, तबाही के शिकार लोगों की भी वकालत करूँ। मेरा दिल सचमुच उन औरतों और बच्चों के लिए दुखी होता है जिनकी ज़िन्दगियाँ कुचली गयी हैं, उन बच निकलने वालों के लिए जिन्हें मदद की ज़रूरत है ताकि वो ज़िन्दा रह सकें।

लिहाज़ा, मैं न्यूयॉर्क जाने वाले हवाई जहाज़ पर सवार होती हूँ, जिसके बाद मैं वॉशिंगटन में अमरीकी संसद से मुख़ातिब हूँगी, इन दो उद्देश्यों की वकालत करने के लिए और पाँच करोड़ डॉलर की अतिरिक्त सहायता की माँग करने के लिए ताकि उस भूचाल से निपटा जा सके जो कई बरसों के दौरान मेरे देश में तबाही मचाने वाला सबसे भयानक भूचाल साबित हुआ है।

अन्तर्राष्ट्रीय सहायता बहुत धीरे-धीरे आती है। बदकिस्मती से, मेरे मुल्क की छवि ऐसी है कि बड़ी मात्रा में विदेशी सहायता नहीं हासिल कर पाती। हस्बमामूल, रिपोर्टर मेरा जगह-जगह पीछा करते हैं, और उनके कुछ सवालों का सरोकार भविष्य में मेरी जलावतनी की सम्भावना से होता है। जब मैं सफ़र करती हूँ, तो इन सवालों का मेरे पास एक सीधा-सा जवाब देता है।

"बाहर का मेरा सफ़र मुख़्तसर होगा, और मैं जितनी जल्दी मुमकिन हुआ, अपने मुल्क और अपने गाँव लौट जाऊँगी।"

यह सच है कि एक अमरीकी पत्रिका ने, जिसने पहले कुछ जाने-माने लोगों को सम्मानित किया है, मुझे 'इस वर्ष की महिला' घोषित किया है, और मैं इस सम्मान से ख़ुश भी हूँ, और इसने मेरे दिल को भी छू लिया है, लेकिन मैं पाकिस्तानी पैदा हुई थी और वही रहूँगी। और मैं एक पाकिस्तानी महिला कार्यकर्ता की हैसियत से सफ़र कर रही हूँ, ताकि ऐसी बदकिस्मती के मारे अपने प्यारे देश के लिए राहत खोजने के काम में मदद कर सकूँ।

□

अगर अपनी अजीबो-ग़रीब तकदीर के ज़रिये मैं इस तरह अपने देश और उसकी सरकार के लिए मदद ला सकी तो यह हमारे लिए बड़े फ़ख़्र की बात होगी। ख़ुदा मेरी मुहिम की हिफ़ाज़त करे।

मुख़्तार माई
नवम्बर 2005

आभार

मैं शुक्रिया अदा करना चाहूँगी :

अपनी सहेली नसीम अख़्तर का, उसके सच्चे समर्थन के लिए;

मुस्तफ़ा बलूच और सैफ़ ख़ान का जिन्होंने इस किताब के लिखे जाने के दौरान मेरे दुभाषिये होना मंज़ूर किया;

कनेडियन एजेंसी फ़ॉर इंटरनैशनल डिवेलपमेण्ट, सी.आई.डी.ए.;

ऐमनेस्टी इंटरनैशनल;

अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार संघ;

डॉ. आमना बुत्तर, अध्यक्ष, एशियन-अमेरिकन नेटवर्क अगेंस्ट अब्यूज़ ऑफ़ ह्यूमन राइट्स;

और उन सारे संगठनों का जो पाकिस्तान में महिला अधिकारों की रक्षा में खड़े हैं, और उन औरतों का, जो दुनिया भर में औरतों पर हिंसा के ख़िलाफ़ लड़ रही हैं, जो मेरे संघर्ष में भी मेरे साथ खड़ी रहीं;

और उन सभी दाताओं का, सरकारी और निजी दोनों, जिन्होंने मुख़्तार माई स्कूल और उसके विस्तार के निर्माण में आर्थिक सहायता दी;

आख़िर में, मैं ख़ास तौर पर अपने नन्हें शागिर्दों, लड़कियों और लड़कों का शुक्रिया अदा करना चाहूँगी, स्कूल में जिनकी कड़ी मेहनत मुझे यह उम्मीद करने के लिए प्रेरित करती है कि अपने गाँव में एक बेहतर तालीमयाफ़्ता पीढ़ी को बढ़ते देखूँगी, भेद-भाव से रहित, जिसमें मर्द और औरतें एक-दूसरे के साथ सुकून से रह रहे हों।

□□□

कुछ पारिभाषिक शब्द

हुदूद - शरीयत के अनुसार ऐसे अपराधों के लिए दण्ड जो कुरान द्वारा प्रतिबन्धित किये गये हैं। जैसे : ज़िना।

जिर्गा - कबाइली पंचायत। जिर्गा में कबीले के बुज़ुर्ग होते हैं और इसकी अध्यक्षता कबीले का सरदार करता है या कम महत्वपूर्ण मामलों में स्थानीय कबाइली नेता। जिर्गा की बैठक नियमित रूप से भी हो सकती है और उसे वक्तन-बवक्तन भी बुलाया जा सकता है। जिर्गा में विविध प्रकार के मामले निपटाये जाते हैं, ज़मीन और पानी के विवादों से ले कर इज़्ज़त के मामलों तक और हत्या और पुश्तैनी झगड़े भी। हिन्दुस्तान की तरह पाकिस्तान में भी कबीलों और बिरादरियों के पंचायती न्याय का लम्बा इतिहास है। मौजूदा वक्त में अक्सर जिर्गा की कोई औपचारिक कानूनी वैधता नहीं होती। लेकिन इसका प्रभाव कई बार औपचारिक कानून से बढ़ कर होता है। किसी युग में सामाजिक सामंजस्य बनाये रखने के लिए गठित ये पंचायतें अपनी पुरुष-प्रधान संरचना के कारण अब अधिकतर पुरातन पंथी तौर-तरीकों को बनाये रखने के लिए और औरतों और लड़कियों के अधिकारों के दमन का काम करती हैं। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान, दोनों देशों में इन पंचायतों के ख़िलाफ़ आवाज़ें उठती रहीं हैं। जनवरी 2005 में पाकिस्तान के राष्ट्रपति मुशर्रफ ने इज़्ज़त के नाम पर होने वाले अपराधों के खिलाफ़ एक कानून पर हस्ताक्षर किये लेकिन यह कानून जिर्गा में हिस्सेदारी को न तो प्रतिबन्धित करता है न उसे दण्डनीय मानता है।

कारी - शाब्दिक अर्थ है शर्म। यह उन औरतों और लड़कियों के लिए प्रयोग में लाया जाता है जिन्हें अपनी इच्छा से चुने गये व्यक्ति के साथ ताल्लुक बनाने के अपराध में यन्त्रणा दी जाये या बेच दिया जाय।

कारोकारी - इज़्ज़त के नाम पर की जाने वाली हत्याएँ।

सरायकी - पंजाबी की एक बोली जो सरहद के दोनों तरफ़ बोली जाती है।

सुन्नत - कुरान के बाद इस्लामी कानून का दूसरा श्रोत। इसमें हज़रत मुहम्मद की कहनी और करनी शामिल है। चूँकि कुरान रोज़मर्रा की ज़िन्दगी के हर पहलू के बारे में निर्देश नहीं देती इसलिए जो कुछ हज़रत मुहम्मद ने कहा या किया उसे मार्गदर्शन के तौर पर स्वीकार करके इस्लामी कानून का दर्जा दिया गया है।

ज़िना - अवैध सम्बन्ध और व्यभिचार। ज़िना एक सामान्य शब्द है जो मर्द-औरत के बीच अवैध यौन-सम्बन्धों के लिए इस्तेमाल किया जाता है। इस्लामी कानून में यह एक घोर अपराध है और इसके लिए बहुत कड़ी सज़ाओं का प्रावधान है। ज़िना को साबित करने के लिए चार चश्मदीद गवाहों की ज़रूरत पड़ती है। अक्सर इन मामलों में औरत की गवाही को मर्द की गवाही से कमतर समझा जाता है। इसकी वजह से एक ओर तो औरत के लिए अपने को बेगुनाह साबित करना या अपने ख़िलाफ़ की गयी ज़ोर-ज़बरदस्ती को साबित करना बहुत मुश्किल हो जाता है और दूसरी तरफ़ इस कानून के दुरुपयोग की गुंजाइशें भी बढ़ जाती हैं।

ज़िना-बिल-जब्र - बलात्कार।

❐